UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182459

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 52/U52N Accession No. 5H.1572

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक :
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

Checked 1969

दूसरी बार १९५६
मूल्य
एक रुपया

Checked 1969

मुद्रक,
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०,
दिल्ली ।

युद्ध से त्रस्त
बीसवीं सदी
की
मानवता
को

आमुख

इस नाटक के लिखे जाने का एक इतिहास है। मुझे इतिहास से प्रेम है, परन्तु फिर भी उसकी कथावस्तु को लेकर मैंने शायद ही कोई कहानी या एकांकी लिखा हो। वर्तमान युग में ही लिखने के लिए इतनी सामग्री है कि भूतकाल की ओर ध्यान नहीं जाता। आज का युग सामाजिक रचनाओं की माग करता है, वह आज की समस्या को सुलझाना चाहता है और उसकी गति इतनी तेज है कि रुककर पीछे देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। फिर भी यह नाटक लिखा गया।

गत वर्ष आकाशवाणी के दिल्ली स्टेशन के नारी-विभाग में रेडियो रूपकों का एक क्रम शुरू किया गया था। उसका शीर्षक था—"मैं भी मानव हूँ" और उसका उद्देश्य पुरातन इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवन-झाकी देते हुए, यह बताना था कि उन्होंने कुछ भी क्यों न किया हो, वे थे मानव। 'अशोक' उन व्यक्तियों में सर्व प्रथम था और उसपर मुझे लिखना था। इस नाटक का प्रथम अंक लगभग वही रूपक है जो मैंने दिल्ली रेडियो के लिए लिखा था। वहाँ से यह कई बार प्रसारित हो चुका है।

कुछ दिन बाद आकाशवाणी के उस विभाग से, जहा से भारत के अतिरिक्त अन्य देशों के लिए कार्यक्रम प्रसारित होते है, एक और क्रम शुरू हुआ। उसका शीर्षक था—"इतिहास का एक पृष्ठ।" उसमें भारत के इतिहास की कुछ गौरवमयी कहानियों की झाकी दी जाती थी। उसके लिए मैंने अपनी पारी में 'अशोक' को चुना और 'देवानाम्प्रिय' के नाम से एक रेडियो रूपक लिखा। उसमें दिखाया गया था कि अशोक 'धर्मलिपियां' लिखवा रहा है और अपने पिछले जीवन की घटनाओं को याद करता जाता है। दूसरे अंक की कथा उसी रूपक से ली गई है। एक-शिलालेख में ये शब्द आते है—"जहा लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देश-निकाला

आमुख

इस नाटक के लिखे जाने का एक इतिहास है। मुझे इतिहास से प्रेम है, परन्तु फिर भी उसकी कथावस्तु को लेकर मैंने शायद ही कोई कहानी या एकाकी लिखा हो। वर्तमान युग मे ही लिखने के लिए इतनी सामग्री है कि भूतकाल की ओर ध्यान नही जाता। आज का युग सामाजिक रचनाओं की माग करता है, वह आज की समस्या को सुलझाना चाहता है और उसकी गति इतनी तेज है कि रुककर पीछे देखने का अवकाश ही नही मिलता। फिर भी यह नाटक लिखा गया।

गत वर्ष आकाशवाणी के दिल्ली स्टेशन के नारी-विभाग मे रेडियो रूपको का एक क्रम शुरू किया गया था। उसका शीर्षक था—"मै भी मानव हूँ" और उसका उद्देश्य पुरातन इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्तियो की जीवन-झाकी देते हुए, यह बताना था कि उन्होने कुछ भी क्यो न किया हो, वे थे मानव। 'अशोक' उन व्यक्तियो मे सर्व प्रथम था और उसपर मुझे लिखना था। इस नाटक का प्रथम अंक लगभग वही रूपक है जो मैंने दिल्ली रेडियो के लिए लिखा था। वहाँ से यह कई बार प्रसारित हो चका है।

कुछ दिन बाद आकाशवाणी के उस विभाग से, जहा से भारत के अतिरिक्त अन्य देशो के लिए कार्यक्रम प्रसारित होते है, एक और क्रम शुरू हुआ। उसका शीर्षक था—"इतिहास का एक पृष्ठ।" उसमे भारत के इतिहास की कुछ गौरवमयी कहानियों की झाकी दी जाती थी। उसके लिए मैंने अपनी पारी मे 'अशोक' को चुना और 'देवानाम्प्रिय' के नाम से एक रेडियो रूपक लिखा। उसमे दिखाया गया था कि अशोक 'धर्मलिपिया' लिखवा रहा है और अपने पिछले जीवन की घटनाओं को याद करता जाता है। दूसरे अंक की कथा उसी रूपक से ली गई है। एक-शिलालेख में ये शब्द आते है—"जहा लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देश-निकाला

हो, ऐसा जीतना न जीतने के बराबर है।" इन शब्दो को बोलते-बोलते अशोक को कलिग-युद्ध की याद आ जाती है और उसे याद आता है कि ये शब्द कलिंग की राजकुमारी ने कहे थे। इतिहास मे इस बात की चर्चा नहीं आती। आ भी नही सकती। राजकुमारी मेरी कल्पना की सृष्टि है, पर यह नई कल्पना नही है। पहले भी कुछ लेखक ऐसी कल्पना कर चुके हैं। श्री जगदीश चन्द्र माथुर के एकांकी 'जय पराजय'[1] में यह राजकुमारी उपस्थित है, यद्यपि संसार के मनुष्यो की भांति मेरी और उनकी कल्पना-सृष्टि मे अन्तर है। कलिंग-युद्ध के बाद अशोक के जीवन मे जो महान् परिवर्तन हुआ उसके लिए निस्सन्देह कुछ प्रबल कारण रहे होंगे। कुछ ऐसी घटनाएँ घटी होंगी, कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई होंगी कि जिन्होंने अशोक के हृदय पर प्रबल आघात किये होंगे और उसे युद्ध से घृणा हो गई होगी। मैंने राजकुमारी की सृष्टि इसी दृष्टि से की है।

तीसरे अंक मे जो कहानी है वह इस दृष्टिकोण का चरम बिन्दु है। बिना इस प्रकार के प्रबल आघात के अशोक के हृदय मे इतना गहन संघर्ष नही मचा होगा, जो भारत के इतिहास को पलट दे। यह अंक मेरी कहानी 'जीवन-दीप' का रूपान्तर है। दिल्ली की प्रसिद्ध साहित्यिक सस्था 'शनिवार-समाज' मे मैंने इस कहानी को पढा था। इसपर अच्छी चर्चा हुई थी। कुछ लोगो को कुमार की आत्महत्या पर आपत्ति थी। कुमार की कल्पना कोई नई कल्पना नही है, परन्तु अधिकांश लेखकों ने उसे या तो कलिग-युद्ध मे वीरतापूर्वक लड़ते-लडते प्राण देते चित्रित किया है या धृष्टता के कारण अशोक द्वारा उसको मृत्यु-दण्ड दिलाया है, परन्तु मैंने अशोक द्वारा मृत्यु-दण्ड दिलाकर दिखाया है कि पश्चात्ताप के कारण अशोक राजकुमार को फिर क्षमा कर देता है, लेकिन राजकुमार सम्राट् अशोक की क्षमा ग्रहण नही करता और अवसर पाकर आत्महत्या कर लेता है। उसकी आत्म-हत्या का

---

१. यह एकांकी श्री सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' में प्रकाशित हुआ था।

उद्देश्य कायरता नही है, बल्कि अशोक के हृदय मे जो पश्चात्ताप की आग सुलगने लगी है, उसे तेज करना है। यह कल्पना भी मूल में मेरी नही है। उडिया की लेखिका श्रीमती सरस्वती देवी पाणिग्राही के नाटक 'कलिग विजय'[1] मे यही कल्पना की गई है। हा, उस कल्पना का उद्देश्य मेरे उद्देश्य से कुछ भिन्न है। इस प्रकार राजकुमार की आत्महत्या की कल्पना सोद्देश्य है। वह इतिहास की दृष्टि से असत्य प्रमाणित हो सकती है, परन्तु अकारण प्रमाणित नही हो सकती। इतिहास की घटनाओ को तोड़ने-मरोड़ने अथवा उनके मनमाने अर्थ लगाने का हमे अधिकार नही है, परन्तु परिस्थितियों के अनुसार उचित कल्पना करने का अधिकार अवश्य है। हा, ऐसी कल्पना से ऐतिहासिक सत्य को बल मिलना चाहिए। इस कल्पना से अशोक की ऐतिहासिक हृदय-परिवर्तन की घटना को यथेष्ट बल मिलता है। उसे अपनी पाशविक शक्ति के खोखलेपन का पता लगता है।

एक और नई कल्पना इस नाटक मे की गई है। साधारणतया महेन्द्र और सघमित्रा अशोक के पुत्र और पुत्री प्रसिद्ध है, परन्तु मैने उन्हे अशोक के भाई-बहन बताया है। अशोक के परिवार के बारे मे इतिहास निर्विवाद रूप से कुछ नही बताता। जनश्रुतियों, गाथाओ तथा भारत और लका के बौद्ध ग्रन्थो के आधार पर ही इतिहासकारो तथा दूसरे लेखको ने उसका निश्चय किया है। 'दिव्यावदान' तथा 'महावंश' उनमे प्रमुख है। अशोक के शिला-लेखो, स्तम्भ-लेखो तथा गुहा-लेखो से उसके अनेक भाई-बहनो, रानियो और पुत्र-पुत्रियो के होनेका पता लगता है, परन्तु नाम एक-दो ही का आता है। उदाहरण के लिए महावश के अनुसार असन्धिमित्रा अशोक की प्रधान रानी थी। इसके अनुसार एक रानी जिसका नाम 'देवी' था उज्जैन मे रहती थी। महेन्द्र और सघमित्रा उसीकी सन्तान थे। दिव्यावदान (पृष्ठ ३९७-९८) सम्राट् की एक रानी का नाम तिष्यरक्षिता बताता है। कथा आती है कि इस रानी से सम्राट् ने बुढापे मे विवाह किया था और उनके सुन्दर पुत्र

---

१. देखिए 'हंस' वर्ष ८, अंक १२, सितम्बर १९३८

कुणाल की आंखे इसी रानी ने निकलवाई थी। शाक्य कुमारी और पद्मावती भी अशोक की रानिया बताई जाती है। पद्मावती का नाम गाथाओं में आता है और यह कुणाल की माता बताई गई है। कही-कही कुणाल की माता का नाम असन्धिमित्रा भी आता है, परन्तु गौण स्तम्भ-लेख (चतुर्थ) मे जिस रानी का नाम आता है वह 'कारुवाकी' है।

"देवानाम्प्रिय के अनुशासन से सर्वत्र महामात्रो को यह कहा जाय कि यहां जो कुछ भी दान द्वितीय रानी ने किये हो—चाहे आम्रकुज, चाहे धर्म-शाला, चाहे अन्य कुछ, सबकी गणना रानी के नाम किये जायं। यह द्वितीय रानी कारुवाकी, तिवाला की माता की विनय है।"

मैंने अपने नाटक मे इसी 'द्वितीय रानी कारुवाकी' को लिया है। सम्भवत· यह रानी अशोक को विशेष प्रिय थी। इसी लेख मे कारुवाकी के पुत्र तिवाला का नाम भी आया है। इस पुत्र के अतिरिक्त महेन्द्र, उज्जैनो कुनाल और जालौका भी अशोक के पुत्र बताये गए है। हमे यहां महेन्द्र की चर्चा करनी है, क्योंकि उसके अतिरिक्त और किसी का सम्बन्ध इस नाटक से नही है। "उत्तरी बौद्ध अनुश्रुति महेन्द्र को अशोक का भाई कहती है, पर सिहली वृत्तान्तो के अनुसार वह उसका पुत्र था।" (भारतीय इतिहास की रूप-रेखा, जयचद्र विद्यालकार, भाग २, खण्ड ४, प्रकरण १६, १३६ अ, पृष्ठ ६७०)। सिहली वृत्तान्त से तात्पर्य 'महावंश' से है। यह सिद्ध हो चुका है कि उसके वृत्तान्त असत्य भले ही न हो, परतु वे अनिवार्य रूप से अति-रजित है। बौद्धधर्म का अशोक पर क्या प्रभाव पडा, यह बताने के लिए उसे प्रारम्भिक जीवन में बडा क्रूर चित्रित किया गया है। लिखा गया है कि अपने ९९ भाइयो की हत्या करके अशोक गद्दी पर बैठा था। अब यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसी कोई बात नही थी। हा, केवल एक भाई से उसका झगड़ा हुआ था। वह उसका सौतेला बडा भाई सुसीम था। सम्भवत: वह पिता का लाडला था या शायद बौद्ध धर्म के प्रति रुझान होने के कारण वह मगध की राजगद्दी पर बैठने योग्य नही समझा गया। कुछ भी हो, इसी एक भाई से अशोक का झगडा हुआ था। उसके शेष भाई उसके राज्यकाल में

उपस्थित थे। सातवे स्तम्भ-लेख मे लिखा है—

"यहा (पाटलीपुत्र) और बाहर के मेरे अवरोधो मे वे महामात्रगण विविध भांति के कई आनन्द देनेवाले कार्यों मे लगे है तथा पुण्य कार्यों की बढ़ती के हेतु और धर्मानुष्टि के लिए मैने आदेश किया है कि वे रानियो के और मेरे अतिरिक्त, मेरे पुत्रो और अन्य देवी-कुमारो के दान-कार्य के लिएनियत किये जायं।"

श्री भगवती प्रसाद पाथरी ने अपनी पुस्तक 'अशोक'में इस लेख पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"इस सदर्भ के 'देवीकुमारो' को अशोक की रानियो के पुत्र न समझे जाने चाहिऐ, अपितु ये देवी-कुमार अशोक के पिता की रानियो अथवा देवियों के पुत्र थे—अर्थात ये कुमार अशोक के सौतेले भाई थे।"[1]

पाचवे प्रधान शिलालेख मे यह बात और भी स्पष्ट रूप से कही गई है—

"ये (धर्म महामात्र) यहा (अथवा पाटलिपुत्र) तथा बाह्य दूरस्थ नगरो मे मेरे तथा भाइयो और बहनो के अन्त पुर और मेरे अन्य सम्बन्धियों के यहां सर्वत्र नियुक्त है।"[2]

यही नही गाथाओ के अनुसार अशोक अपने भाई-बहनो के प्रति बडा उदार और कृपालु था। यह उन्हे बहुत स्नेह करता था, विशेषकर महेन्द्र को लेकर उसके स्नेह की अनेक कथाए प्रचलित है। एक गाथा मे आता है कि महेन्द्र अशोक का सौतेला भाई था और बडा क्रूर, सयमहीन और अमर्यादित था। अशोक ने उसे बुलाया और भाई के स्नेह तथा पिता के प्रेम की याद दिलाकर समझाया। महेन्द्र ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और अन्त मे वह 'अरहत' हुआ। सम्राट् ने महेन्द्र के रहने के लिए पाटलिपुत्र मे कुछ गुफाएं प्रदान की। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान के अनुसार अशोक का एक भाई किसी पहाडी पर एकान्तवास किया करता था। सम्राट् चाहते थे कि वह राजप्रासाद मे आकर रहे, किंतु वह नही आया। तब सम्राट्

---

१. पृष्ठ १०–११ (उनकी इस टिप्पणी का आधार EP Indica, ii 276 है।)

२. पृष्ठ १७ **अशोक**–भगवतीप्रसाद पांथरी।

ने पाटलिपुत्र के पास ही उसके रहने के लिए एक गुफा बनवा दी।[1] यद्यपि फाहियान ने इस भाई का नाम नही दिया है तथापि सम्भवतः यह उपरोक्त महेन्द्र ही है। श्युआन चुआउ (हुएनसाग) ने भी महेन्द्र को अशोक का विमातज भाई लिखा है और इसी कथा का विस्तार से वर्णन किया है।[2] अन्य ग्रन्थों मे महेन्द्र की कथा दूसरे ढग पर दी गई है। पाली ग्रन्थों मे उसे तिष्य कहा गया है, दिव्यावदान मे वितासोक लिखा है और कुछ चीनी ग्रन्थ उसे सुदन्त और सुगाम भी कहते है।[3]

जो हो, उपरोक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि महेन्द्र अशोक का भाई था। वह सौतेला था और बौद्ध हो गया था। कुछ विद्वान् मानते है कि एक महेन्द्र अशोक का पुत्र भी था। कुछ किसी निश्चय पर नही पहुँचते। भारतीय इतिहास की रूपरेखा[4] मे श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी अनिश्चित बात लिखी है—"संगीति पूरी होने पर तिस्स ने अनेक प्रत्यन्त देशों में बौद्ध शासन पहुँचाने को प्रचारक भिक्षुओ के वर्ग भेजे। अशोक का अपना बेटा या भाई महिन्द (महेन्द्र) भी उनमे से एक वर्ग का नेता था।"

ऐसी अनिश्चित परिस्थिति मे मैंने महेन्द्र को अशोक का भाई माना है और इस मान्यता का आधार उत्तरी बौद्ध ग्रन्थ है। इन्ही ग्रन्थो के आधार पर मैंने अशोक के धर्मगुरु का नाम उपगुप्त दिया है। कही-कही 'तिस्स' नाम भी आता है। सम्भवत ये दोनो एक ही व्यक्ति थे।[5] मैंने ही नही, कुछ और लेखको ने भी महेन्द्र को भाई स्वीकार किया है और महेन्द्र को भाई मान लेने पर सघमित्रा स्वतः ही अशोक की बहन बन जाती है, क्योकि इस बात पर सब एकमत है कि सघमित्रा महेंद्र की बहन थी। संघमित्रा को

---

१. SI-yuKi, Volume ii, p. 91 'अशोक' पृष्ठ १२ पर उद्धृत।
२. हुएनसाग का भ्रमण-वृत्तात—प्रकाशक।
३. अशोक--पांथरी, पृष्ठ १२ पर।
४. भाग २, खण्ड ४, प्रकरण १६, १३५ ए, पृष्ठ ६६५।
५. भारतीय इतिहास की रूप-रेखा, पृष्ठ ६६५।

अशोक की बहन मानने का एक और भी कारण है। महावंश के अनुसार, जिसमे महेन्द्र और संघमित्रा को अशोक का पुत्र-पुत्री माना है, संघमित्रा का विवाह हो चुका था। उसके पति का नाम अग्निब्रह्मा तथा पुत्र का नाम सुमन था। अग्निब्रह्मा और सुमन के बारे में अनेक कथाएं आती हैं और तिथियों का ऐसा घोटाला है कि कुछ भी विश्वास करने को जी नही चाहता। महावंश में लिखा है कि संघमित्रा ५९ वर्ष लंका मे रही। मृत्यु के समय उसकी आयु ७९ वर्ष की थी। अर्थात् लका-गमन के समय वह २० वर्ष की थी। इसी ग्रन्थ मे दूसरे स्थान पर लिखा है कि संघमित्रा अशोक के अभिषेक के १८वे वर्ष लंका गई (महावंश, प्रकरण २०वा) इसके अनुसार कलिग-युद्ध के समय उसकी आयु १० वर्ष की थी, क्योकि कलिग-युद्ध अभिषेक के ८ वर्ष बाद हुआ। महावंश के अनुसार ही भिक्षुणी बनते समय संघमित्रा की आयु १८ वर्ष की थी और वह अभिषेक के ६ठे वर्ष संघ मे प्रविष्ठ हुई थी, अर्थात् कलिंग-युद्ध से दो वर्ष पूर्व, (महावंश, प्रकरण ५वां) जो साधारण मान्यता के अनुसार ठीक नहीं है, क्योंकि युद्ध से पूर्व अशोक ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था, पर यदि इस बात को ठीक मान भी ले तो इसके अनुसार युद्ध के समय संघमित्रा की आयु बीस वर्ष की आती है।[1] इससे स्पष्ट है कि महावंश की प्रत्येक बात प्रामाणिक और एकान्त रूप से विश्वसनीय नही है।

इसके अतिरिक्त मैने इस नाटक मे सघमित्रा और कलिंग के युवराज के प्रणय-सम्बन्ध का वर्णन किया है। इतिहास इस सम्बन्ध मे मौन है। बौद्ध ग्रन्थों, गाथाओ तथा अनुश्रुतियो मे भी कही इसका उल्लेख मुझे नही मिला, परन्तु उडीसा की लेखिका श्रीमती सरस्वती देवी पाणिग्राही ने अपने नाटक 'कलिग-विजय' मे इस प्रणय-गाथा का वर्णन किया है। यद्यपि उन्होने वहां संघमित्रा को अशोक की पुत्री माना है तथापि महावश की तिथियों के अनुसार यह सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि यदि उसकी आयु १० वर्ष

---

१. देखो पृष्ठ २३४, २३८ और २६४ **'अशोक'**—ले० श्री भगवती-प्रसाद पाथरी।

की मानी जाय तो प्रणय का प्रश्न ही नही उठता और २० वर्ष की मानी जाय तो उसका पति अग्निब्रह्मा और उसका पुत्र सुमन उसके साथ रहे होगे। ऐसी अवस्था मे भी प्रणय नही हो सकता। इसलिए महावश की किसी भी बात को न मानकर मैने सघमित्रा को अशोक की छोटी बहन माना है। निस्सन्देह वह सौतेली बहन थी, क्योकि महेन्द्र अशोक का सौतेला भाई था। इस कल्पना का प्रयोग भी मैने अशोक के हृदय पर प्रबल आघात दिखाने के लिए किया है।

इतिहास, लेखो और गाथाओ में अशोक के कई भाइयो का नाम आता है, परन्तु बहन का नाम केवल महावश मे आता है। प्रकरण ४ मे लिखा है—

"रात को स्वप्न मे राजा ने देखा कि उसकी आत्मा लोहो कुम्बिया नरक मे धकेल दी गई है। राजा बडे व्याकुल हुए। इस सत्रास को मिटाने के लिए उसकी छोटी बहन पावनी भिक्षुणी, आनन्दी जो बन्धनों से मुक्त हो चुकी थी, वायु द्वारा पहुँची और राजा से बोली—जो काम तुमने किया है, वह बडे अर्थ का है, धर्म के प्रमुख आचार्यो से इसका प्रायश्चित्त करो, उनके साथ सहयोग प्रदान कर सत्यधर्म (बौद्ध धर्म) का पक्ष ग्रहण करो। ऐसा करने मे तुम्हे शान्ति मिलेगी।" लिखा है अशोक ने बहन के उपदेश का अक्षरश: पालन किया।[१]

कथा सच हो या न हो, परन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि अशोक की बहन थी। शिलालेख भी, जिनका जिक्र ऊपर आ चुका है, इस बात की पुष्टि करते है। इस प्रकार मेरी कल्पनाए कोरी कल्पनाएं नही है। उनकी नीव सुदृढ है।

जहातक नाटक की मूल कथावस्तु का सबध है उसके विषय मे दो मत नही है। कलिग-युद्ध एक ऐतिहासिक घटना है और उसी तरह अशोक का हृदय-परिवर्तन भी। उसकी धर्म-लिपियो की भाषा उसके पश्चात्ताप की साक्षी है। वह पश्चात्ताप किसी सस्ती भावुकता का परिचय नही देता, बल्कि एक महान् राजनीतिज्ञ और एक महान् मानव के हृदय-मन्थन की

---

१. **'अशोक'**, भगवतीप्रसाद पाथरी, पृष्ठ ११०-१११।

झाकी देता है। कलिग-युद्ध मे क्या हुआ, इसका वर्णन त्रयोदश प्रधान शिला-लेख में किया गया है—

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषिक्त होने के आठवे वर्ष कलिग को विजय किया। यहा से डेढ लाख आदमी बाहर ले जाय गए, एक लाख आदमी आहत हुए और इससे कई गुना वे थे जो मरे। उसके पश्चात् जब कलिग साम्राज्य मे मिला दिया गया (अथवा कलिग विजय हुआ) तब से देवताओं के प्रिय का धर्माचरण बढा, धर्म के स्नेह की वृद्धि हुई और धर्म का अत्यधिक विस्तार हुआ।"[1]

इसी शिला-लेख मे, जो कि काफी लम्बा लेख है, फिर लिखा है—

"जितने मनुष्य कलिग-युद्ध में घायल हुए, मरे या कैद किये गए, उनके १००वे या १००० वे हिस्से का नाश भी अब महाराज अशोक के लिए बडे दुख का कारण होगा।"[2]

"जो धर्म की विजय है उसे ही देवताओ का प्रिय मुख्य मानता है। और वह देवताओ के प्रिय को यहा (अपने विजित मे) और सभी अन्तो में—सैकडो योजन पर अर्षो (पश्चिमी एशिया) मे भी जहां अन्तियोक नामक योन राजा है और उस अन्तियोक के परे चार राजा है, तुरमय नामक, अन्तिकिन नामक, मक नामक और अलिक सुदर नामक (तथा) नीचे (दक्खिन तरफ) चोड पाडय (और) ताम्रपर्णो वालो तक, ऐसे ही इधर राज विषयो मे (या राज विषवज्रियो मे) योन-कम्बोजो मे नाभक मे, नाभ पक्तियो मे, भोज पितिनको में, अंध्र-पुलिन्दो मे, (सभी जगह)—प्राप्त हुआ है। सभी जगह देवताओ के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते है। जहा देवताओं के प्रिय के दूत नही भी जाते, वे भी देवताओ के प्रिय के धर्म वृत्त को, विधान को और धर्मानुशासन को सुनकर धर्म का अनुविधान (आचरण) करते है और करेगे। और इस प्रकार सब जगह जो विजय प्राप्त हुई है,

---

१ 'अशोक', भगवती प्रसादपाथरी, पृष्ठ १०८

२. **बौद्ध कालीन भारत**—जनार्दन भट्ट एम० ए०, पृष्ठ १२८।

वह प्रति रसपूर्ण है।"[१]

यह परिवर्तन नि सन्देह अद्‌भुत और महान् है, परन्तु यह एकदम ही नही हो गया था। यह कैसे हुआ, इसका सुदर और स्पष्ट वर्णन अशोक ने कलिंग-विजय के बाद चौथे बरस प्रकाशित अपनी पहली धर्म-लिपि (अभिलेख) में इस प्रकार किया है —

"अढ़ाई बरस से अधिक बीते कि मै श्रावक (उपासक) हुआ हूँ पर मैने अच्छा प्रक्रम (उद्यम) नही किया, बरस से ऊपर हुआ जब मै सघ के पास पहुँचा और खूब प्रक्रम करने लगा। इस बीच जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) के मनुष्यो को देवताओ से मिला दिया है, यह प्रक्रम का फल है। बडे ही लोग यह फल पा सकते हों सो नही; छोटा आदमी भी प्रक्रम से विपुल स्वर्ग पा सकता है। इसीलिए यह (आदेश) सुनाया गया कि छोटे-बड़े सभी प्रक्रम करें। अंत भी न जान जायँ कि (हमारा) यह प्रक्रम है और यह चिरस्थायी हो। यह कार्य बढ़ेगा, निश्चय से बढ़ेगा, खूब बढेगा, दिन दूना रात चौगुना बढेगा।"

एक और प्रश्न उठ सकता है कि आखिर अशोक ने कलिंग विजय क्यों किया। यद्यपि इस नाटक की कथावस्तु से उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है तो भी यह प्रश्न असंगत नही है। इसका उत्तर भी बड़ा सरल है। अशोक कुशल राजनीतिज्ञ था और चाणक्य की नीति का अनुसरण करते हुए वह समूचे भारत को मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत लाना चाहता था। इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कलिंग मौर्यों से पूर्व मगध के अधीन था। चन्द्रगुप्त ने जब नन्दो के विरुद्ध विद्रोह किया तो वह स्वतन्त्र हो गया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त और फिर विन्दुसार के समय में इस जनपद को साम्राज्य में मिलाने की निरन्तर कोशिश की। तिब्बत के लामा तारानाथ के बौद्ध धर्म के इतिहास (अ० १८) में लिखा है—"उसने करीब

---

२. **भारतीय इतिहास की रूप-रेखा**—जयचंद्र विद्यालंकार, भाग दो, खण्ड ४, प्रकरण १६, १३५ ए, पृष्ठ ६६६।

सोलह राजधानियो के राजाओ और मत्रियो को उखाड डाला और एक लम्बे युद्ध के बाद पूरबी और पच्छिमी समुद्रो के बीच समूची भूमि को राजा बिन्दुसार की अधीनता मे ला दिया।" परंतु वह कलिंग को न जीत सका। यद्यपि वह तीन ओर से मौर्य-विजित से घिर गया था तो भी अपनी शक्तिशाली हस्ति और जल-सेना केकारण वह मगध-साम्राज्य से लोहा लेता रहा। चाणक्य की चातुरन्त-राज्य-नीति को पूर्ण करने के लिए कलिग को विजय करना आवश्यक था और वही अशोक ने किया। यदि वह ऐसा न करता तो कलिग अपनी समृद्धि और शक्ति के कारण मौर्य-साम्राज्य के लिए घातक बन जाता।

साम्राज्यवाद की यह नीति बुरी थी या अच्छी, यह विचार यहां असंगत है, फिर भी इतना स्पष्ट है कि कलिंग-युद्ध की क्रूरता और बर्बरता से अशोक का हृदय त्रस्त हो उठा था और उसनें भविष्य में युद्ध न करने की घोषणा की। भेरी-नाद, धर्म-घोष में परिवर्तित कर दिया गया। इस प्रकार साम्राज्य बना रहा, परतु उसका आधार हिंसा के स्थान पर उदारता, सहिष्णुता और मृदुता हो गये। आज का युग भी बहुत-कुछ अशोक-कालीन युग के समान है। साम्राज्य लिप्सा ने संसार को त्रस्त कर रखा है। शस्त्र शक्ति का एकमात्र अवलम्ब है और उनके संघर्षण से घायल होकर मानवता सिसक रही है। अशोक ने जो सन्देश अपने वंशधरों के लिए छोड़ा था, वह हमारे लिए कितना उपयुक्त है—

"मेरे पुत्र और परपौत्र शस्त्रो द्वारा विजय करने का विचार न करें। उन्हें उदारता (शान्ति) और सहिष्णुता अथवा दण्ड साम (मृदुता) में आनन्द मानना चाहिए। यदि उन्हें विजय में आनन्द आया तो धर्म विजय को ही विजय समझना चाहिए। उसी विजय में आनन्द मानना चाहिए।"

परंतु इस सन्देश का अर्थ निष्क्रियता नही है, क्रिया है, और इस नाटक की भिक्षुणी के शब्दों में—"क्रिया में सदा अग्नि होती है। अग्नि जीवन की शर्त है। वह प्रकाश भी देती है और जलाती भी है यह दूसरी बात है, कि कुछ लोग अपने को जला लेते हैं और कुछ अपनी दुर्बलता को।"

सक्षेप मे इस नाटक की यही कहानी है। मेरे न चाहने पर भी यह लिखा गया, पूरा हुआ और अब छप भी गया है। तीन बार तीन स्वतंत्र एकाकियो के रूप मे लिखा जाने के कारण मैंने नाटक को तीन ही अंकों में पूर्ण कर दिया है। इस प्रकार दृश्यो का प्रयोग बिल्कुल नही हुआ है। हां, कुछ बातो का स्पष्टीकरण करने के लिए 'प्रास्ताविक' और 'उपसंहार' जोड दिये है, पर उनके बिना भी नाटक अपने आप मे पूर्ण है।

अन्त मे जो इस नाटक के सृजन के कारण है उन सबका मै आभारी हूँ, विशेषकर आकाशवाणी के अधिकारियों को मुझे धन्यवाद देना है। भाई चिरजीत ने कृपापूर्वक जो गीत लिख दिये है, उनके बिना तो नाटक का रस खण्डित हो जाता। उनका मै बहुत ही कृतज्ञ हूँ। मै उन विद्वानों और कलाकारो का भी आभारी हूँ जिनके परिश्रम से संचित सामग्री का मैंने लाभ उठाया है।

दूसरा संस्करण

इस वर्ष विश्व तथागत बुद्ध की २५००वी जयती मना रहा है। इसी परम पुनीत अवसर पर 'नव-प्रभात' का दूसरा सस्करण होना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। इन साढे चार वर्षो मे विश्व तथागत के संदेश के निकट ही आया है। आज से पूर्व उसने शायद ही कभी शाति की आवश्यकता पर इतना जोर दिया हो। सचमुच भावी युद्ध की सर्वनाशिनी कल्पना से कपित विश्व अशोक के चरित्र को जितना आज समझ सकता है उतना शायद और कभी नही, विशेषकर कलिग-युद्ध के बाद घटनेवाली उसके हृदय परिवर्तन की घटना आज के 'बर्बर' शासको के लिये दीप-स्तम्भ के समान है।

रंगमंच की दृष्टि से नाटक मे कुछ सशोधन किये गए हैं। आवश्यकतानुसार और भी परिवर्तन किये जा सकते है।

इसका पहला अक अनेक बार रेडियो और रंगमंच पर अभिनीत हो चुका है। कई दूसरी भाषाओ में उसका अनुवाद भी हुआ है।

बुद्धपूर्णिमा १९५६ **—विष्णु प्रभाकर**

समय

कलिंग-युद्ध की अन्तिम रात, ईसा से २६५ वर्ष पूर्व का भारत ।

स्थान

कलिंग की राजधानी तोसली (वर्तमान धौली, जि० पुरी) के पास युद्ध-भूमि ।

पात्र

अशोक	.	भारत-सम्राट्
राधागुप्त	:	अशोक का महामात्य
महेन्द्र	:	अशोक का छोटा भाई
कुमार	:	कलिंग के युवराज
उपगुप्त	:	बौद्ध भिक्षु
चण्डगिरि	:	बन्दीगृह का घातक
भिक्षु	:	छद्म वेषधारी गुप्तचर बन्धुजीव
प्रतिहारी	:	द्वारपाल
सघमित्रा	:	अशोक की छोटी बहन
कारुवाकी	:	अशोक की छोटी रानी
रेवा	:	गायिका
भिक्षुणी	:	कलिग की राजकुमारी

●

नव-प्रभात

प्रस्ताविक

(रंग मंच पर अस्तगामी सूर्य की लालिमा के कारण प्रकाश मन्द पड़ता जा रहा है। आने वाली मृत्यु की तरह अन्धकार जैसे उसे ग्रसता आता है। दूर पृष्ठभूमि में सैन्य शिविर से मानो शोणित के बादल उठ कर आकाश में छा गए हैं। कभी अग्नि की लपटे ऐसे धुँआ फेंकती जान पड़ती हैं जैसे महानाश आकाश को निगल जाना चाहता हो। कभी पंख फड़फड़ाते हुए गिद्ध एक भयंकर अपशकुन की तरह निकल जाते हैं। गिरोह से अलग हुआ कोई गीदड़ चोर की तरह सूँघता हुआ आता है और चला जाता है। वातावरण में न कोलाहल है, न उत्तेजना पर शान्ति भी नहीं है, केवल भयानक मौन है जैसे किसी ने चीत्कार का गला घोंट दिया हो। जैसे महानाश की लीला देखकर शान्ति की देवी दुःस्वप्न देखती-देखती संज्ञाहीन हो गई हो। परदा उठने के कुछ क्षण बाद धीरे-धीरे वीणा के स्वर उस मनहूस मौन को भंग करते हुए पास आते हैं पर उस संगीत में आनन्द का उद्रेक नहीं है, वेदना की टीस है जैसे वह संगीत नहीं, कराहती हुई मानवता की आवाज है। वह स्वर जैसे-जैसे पास आता है हृदय में भय, आशंका, विषाद और संहार के बादल सांप की तरह गेंडुली मार कर

बैठ जाते हैं। शूल चुभने लगते हैं। तम उसे जकड़ लेता है। तभी गाते गाते गायिका मंच पर आती है। वह युवती है, सुन्दरी है पर उसके मुख पर इतनी गहरी वेदना है; उसके बड़े-बड़े नेत्रों में निराशा का इतना गहरा अंधकार है कि देखकर भय लगता है। उसका जूड़ा ढीला हो गया है जिसके कारण बकुल माला लटक गई है। उसके अधोवस्त्र को कसे हुए कर-धनी भी कुछ नीचे सरक गई है परन्तु उसे किसी बात का ध्यान नहीं है। वह दूर रक्तिम-क्षितिज को देखती हुई करुण विषाद भरे स्वर मे गा रही है। उसकी कोमल और लम्बी अंगुलियां जब वीणा के तार को झनझनाती हैं, तो मानो प्रलय चीत्कार कर उठती है।)

गीत

मां, तेरे आगन मे जलती महानाश की ज्वाला!
अस्ताचल पर रक्तिम लपटें लप लप लपक रही हैं,
चिता-धूम के बाल बखेरे उतर रहा तम काला!
ये सड़ते शव, जलते खंडहर, रक्तिम रोती राहें!
रणचंडी की तृषा अपरिमित, भर भर रीता प्याला!
मां, आहों से नही पिघलता वज्र हृदय हिंसा का,
तेरे दृग-जल से न बुझेगी यह ज्वाला विकराला!
राख चिताओ की उड़ उड़कर पूछ रही सुरपुर से,
"कहां भगीरथ-सा जन जीवन-गंगा लाने वाला?"
मां, तेरे आँगन में जलती महानाश की ज्वाला!

(गाते-गाते वह इतनी तन्मय, इतनी आत्म विभोर हो उठती है कि सुधबुध खो जाती है। सुनने वालों के हृदय वेदना और महानाश के भय से और भी धुक-धुक करने लगते हैं। इसी समय रंग-मच पर एक दूसरी नारी प्रवेश करती है। वह संघमित्रा है। अभी युवती है। उसने सैनिक का परिधान पहना है। जूड़ा कस कर बांधने से उसके मुख की मुद्रा कसी हुई कमान की तरह हो गई है। कमर में फेंटा कसे वह किसी वीर से कम नहीं दिखाई देती पर इस समय वह उद्विग्न है। आते ही वह करुण स्वर में पुकारती है।)

संघमित्रा : रेवा, रेवा !!

(गायिका सहसा काँप उठती है)

रेवा : कौन ! (देख कर) देवी ! (झुक कर) मै देवी को प्रणाम करती हूँ।

संघमित्रा : हुआ रेवा ! पर तुम यह क्या कर रही हो ? अपनी प्रफुल्लित वाणी को वेदना की टीसों से क्यों भरे दे रही हो। महानाश करने के लिए शस्त्र ही क्या कम हैं जो तुम सगीत की चेतना को भी उसकी दासी बनाए दे रही हो।

रेवा : देवी ! महानाश की इस बेला में केवल शैतान ही प्रसन्नता से नाच रहा है, केवल गिद्ध और गीदड़ ही आनन्द का संगीत अलाप रहे हैं। शेष तो सब मरण की दानवी लीला है। नीचे धरती पर लक्ष-लक्ष भाग्यहीन नारियों

के नेत्रों से बहने वाली वेदना में, असंख्य मानवों के क्षत-विक्षत शव तैरते हैं। ऊपर आकाश में उनकी प्रेतात्माएँ, स्वर्ग में स्थान कम पड़ जाने के कारण, सूर्य का प्रकाश ही नहीं रोकती बल्कि फिर से अपने शवों पर आक्रमण कर रही है और इस वीभत्स लीला को मनुष्य कहता है विजय ! सभ्यता और संस्कृति की विजय ! (**मुड़ कर**) देवी ! क्या आप ऐसी परिस्थिति में संगीत से आहों की अग्नि के अतिरिक्त प्रेम की शीतलता की आशा करती है। मृत्यु के अतिरिक्त जीवन का सन्देश सुनना चाहती है।

संघमित्रा : (**पास आकर उसके कंधे को थपथपाती है**) शान्त रेवा, शान्त ! जो कुछ है वह मै भी देख रही हूँ। मनुष्य आज पागल हो गया है, लेकिन वह इतना अधिक पागल हो गया है कि इस महानाश के सूत्रधार स्वयं सम्राट् उद्विग्न हो उठे है। उन्हे शंका होने लगी है कि यह कलिंग की पराजय है या उनकी हार। यह क्रान्ति का रक्त है अथवा महानाश का शोणित।

रेवा : (**चकित सी**) देवी !!

संघमित्रा : मैं ठीक कह रही हूँ, रेवा। सम्राट को शंका होने लगी है।

रेवा : (**चकित सी**) सम्राट् को शंका होने लगी है ?

संघमित्रा : ऐसा ही जान पड़ता है, रेवा ! पिछले चार-पाँच दिन से उनके स्वभाव में मैं एक अद्भुत परिवर्तन देख

रही हूँ। जब-जब वे रणभूमि या बन्दीगृह से लौटते हैं तब-तब ऐसा लगता है कि जैसे उनके प्राण झुलस रहे हैं।

रेवा : देवी ! यह तो मैंने भी अनुभव किया है **(गम्भीर स्वर)** इधर मधुर मादक संगीत सुनते-सुनते वे चौंक पड़ते हैं। कभी-कभी तो वे अपने हाथों को उलट-पलट कर देखा करते है।

संघमित्रा : यही रेवा, यही शका का जन्म है। रक्त-प्लावित युद्धभूमि और जीवित मानवों की कराहों से गूजते हुए बन्दीगृह से लौट कर, जब वे तुम्हारी तापहारी मधुर वाणी सुनते है, तो उन्हे विश्वास नहीं आता कि इस नरक में यह सुख कहाँ से आ गया।

रेवा : **(सोचती हुई)** देवी की आँखे बहुत दूर तक देख लेती है।

संघमित्रा : **(मुस्कराती हुई)** अच्छा रेवा ! आज क्या तुम सम्राट् के पास नहीं गई ?

रेवा : नहीं देवी। सुना है कि वे आज किसी गम्भीर मंत्रणा में लगे हुए है।

संघमित्रा : समझी। कलिग के राजकुमार अभी नही पकड़े गए हैं। उसी की चिन्ता है।

रेवा : देवी ! अब तो तोसली मे आदमी दिखाई ही नहीं देते। कुमार न जाने कहाँ जा छिपे हैं ? सुना है कि कल उन्होंने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया था। उनकी हाथी-सेना की मार

से मगध-सेना त्राहि-त्राहि कर उठी थी।

संघमित्रा : **(खोई खोई)** हाँ, रेवा ! देखा तो मैने भी था पर उससे क्या। युद्ध अब भी हो रहा है। वह देखो आकाश में गिद्ध कैसे मंडरा रहे हैं ? दूर वह प्रकाश भी तेज हो चला है। अंधेरे को दूर करने के लिए किसी ने फिर आग जलाई है। **(निश्वास)** संसार समाप्त हो जायगा पर यह युद्ध समाप्त नहीं होगा।

रेवा : सच देवी ! यह युद्ध समाप्त नहीं होगा। मनुष्य की दानवी लिप्सा उसे समाप्त नहीं होने देगी। परन्तु देवी ! मरने के लिए मनुष्य इतने प्रयत्न करता है, जीने के लिए भी कुछ करे, तो क्या संसार का कुछ अहित होगा ?

संघमित्रा : **(मुस्कराती है)** रेवा, तुम गाती ही नही सोचती भी हो। पर कुछ गलत सोचती हो। ये सारे प्रयत्न मनुष्य जीने के लिए ही तो करता है। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह यह सब अपने जीने के लिए करता है। तुम जिस कल्याण की बात कहती हो, वह तभी होगा जब मनुष्य दूसरों के लिए जिएगा **(एकदम)** पर, पर···· वह कौन है ?

(संघमित्रा एक ओर संकेत करती है, रेवा भी उधर ही देखती है)

रेवा : कौन ! ओह, वे तो महामात्य है।

संघमित्रा : महामात्य राधागुप्त ! वे कितनी शीघ्रता से

सम्राट् के शिविर की ओर जा रहे हैं; अवश्य कोई बात है। वह सुनो! वह जय-घोष भी उठ रहा है।

(दूर जय घोष उठता है। उठता रहता है)

स्वरघोष : मगध-सम्राट् की जय! सम्राट् अशोक की जय!

रेवा : शायद कुमार पकड़ लिये गए हैं।

संघमित्रा : **(सहसा काँप कर)** कुमार पकड़ लिए गए हैं। क्या सच कुमार पकड़ लिये गए हैं? चलो, रेवा! चलो। महामात्य से पूछें कि क्या सच कुमार पकड़ लिये गए हैं। **(बोलती-बोलती इतनी शीघ्रता से रगमंच से बाहर जाती है कि रेवा चकित रह जाती है और उसे पुकारती हुई पीछे-पीछे दौड़ती है।)**

रेवा : देवि····देवि····**(सहसा रुक जाती है)** कुमार के पकड़े जाने की बात सुनकर देवी संघमित्रा कितनी उद्वेलित हो उठी है। शत्रु हो जाने पर भी कुमार के प्रति उनका प्रेम कम नही हुआ है। **(निश्वास)** प्रेम भी कितनी अद्भुत, कितनी पवित्र भावना है। सब लोग प्रेम ही क्यों नही करने लगते **(एकदम देखकर)** ओह! कुमारी कैसे भागी जा रही है। चलूं, मै भी देखूं····

(वह भी जाती है और क्षणिक सन्नाटे के बाद यवनिका गिर जाती है)

पहला अंक

(सम्राट् अशोक अपने शिविर में इधर-उधर घूम रहे हैं। वहाँ की सजावट में राजसी वैभव की पूरी छाप है। भूमि पर बहुमूल्य कालीन और गलीचे बिछे हैं। यथास्थान मखमली आवरण से वेष्ठित तोषक भी रखे हैं। एक ओर सम्राट् के बैठने का ऊँचा आसन है। इधर-उधर धूपदान रखे हैं जिनसे उठकर सुगंधित धुआँ वातावरण को किंचित धूमिल बना रहा है। द्वार के पास और पीछे की ओर अनेक मुख वाले पतीलसोत रखे हैं जिनमें दीपक जल रहे हैं। पृष्ठभूमि में सांध्य गीत की ध्वनि उठती है। वहाँ और कोई नहीं है। परदा उठने पर सम्राट् घूमते दिखाई देते हैं। वे कुछ उद्विग्न हैं। वे सुन्दर नहीं हैं परन्तु उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली है, विशाल वक्षस्थल, आजानबाहु, प्रशस्त ललाट और बड़े-बड़े नेत्र, सब विश्वास से भरने वाले हैं परन्तु इस समय वह बहुत उद्विग्न हैं। उनके रत्नजड़ित आभूषण, उनका रेशमी उत्तरीय, सब उनकी दीनता को गहरा करते हैं। वह कुछ बोल रहे हैं। कहीं आहट होती है, वह चौंक पड़ते हैं।)

अशोक : (**चौंक कर**) कौन ? (**कोई उत्तर नहीं**) कोई नहीं, कोई तो था ! (**देख कर**) ओह छाया थी, मेरी छाया, मैं समझा कोई सैनिक है···

(स्वर अस्फुट होते हैं। एक दीर्घ निश्वास लेकर वह फिर बोलते हैं)

सब समाप्त हो गया। सब···कलिंग का दर्प चूर हो गया···एक लाख आदमी मर गए···ठीक हुआ··· ठीक हुआ न, युद्ध में आदमी मरते ही हैं····

(इसी समय राधागुप्त शीघ्रता से प्रवेश करते हैं और झुक कर अभिवादन करते हैं।)

राधागुप्त : सम्राट् की जय हो ! कलिंग के राजकुमार बन्दी हो चुके है।

अशोक : (**चौंक कर**) कलिंग के राजकुमार बन्दी हो चुके हैं ?

राधागुप्त : हाँ सम्राट्।

अशोक : सच कहते हो, महामात्य ?

राधागुप्त : आज्ञा हो तो राजकुमार को सम्राट् के चरणों में उपस्थित किया जाय।

अशोक : (**अनमना-सा**) अभी ठहरो। पहले मुझे यह बताओ कि क्या अब युद्ध की आवश्यकता नहीं रही ?

राधागुप्त : हाँ देव, कलिंग-विजय पूर्ण हुई।

अशोक : (**उसी तरह**) कलिंग-विजय पूर्ण हुई। युद्ध समाप्त हो गया। अब शस्त्रों की झंकार सुनने को नहीं मिलेगी। अब आहतों की चीत्कार बन्द हो जायगी।

राधागुप्त : देव ! अब कलिंग में कौन बचा है जो शस्त्रों की

झंकार सुनेगा। जो वृद्ध, वनिताएँ या बालक वहाँ शेष हैं वे न सुन सकते है और न बोल सकते है। वे केवल अपलक दृष्टि से शून्य में ताकते रहते है। उनसे बातें करने पर वे कुछ इस प्रकार देखते है कि बोलने वाला स्वयं पानी-पानी हो जाता है। हाँ, वहाँ केवल एक व्यक्ति है, जो देखता भी है और बोलता भी है।

अशोक : वह क्या बोलता है ?

राधागुप्त : यह तो मै नहीं बता सकूँगा, देव !

अशोक : (**सहसा तेज होकर**) महामात्य ! जानते हो तुम किससे बात कर रहे हो ?

राधागुप्त : जानता हूँ, भारत सम्राट् !

अशोक : तब !

राधागुप्त : सम्राट् चाहें तो वह बात स्वय उसी के मुँह से सुन सकते हैं।

अशोक : तो तुम उस वाचाल को पकड़ लाये हो ?

राधागुप्त : मैने अभी निवेदन किया था, देव ! कलिंग के राजकुमार बन्दी हो चुके हैं।

अशोक : कलिग का राजकुमार ! कुमार बन्दी होकर भी बोलना जानते हैं।

राधागुप्त : तब से वह कुछ अधिक बोलने लगे हैं, सम्राट् !

अशोक : (**ओंठ चबा कर**) वह शायद भारत-सम्राट् चंडाशोक के स्वभाव को नीं जानते।

राधागुप्त : देव ! कुमार मगध में हमारे अतिथि रहे है। सम्राट् उनकी वीरता से परिचित हैं। आखेट के समय उनके हस्त-लाघव की सम्राट् ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और देवी संघमित्रा···

अशोक : (**ज़ोर से**) महामात्य !

राधागुप्त : अपराध क्षमा हो, देव। देवी सघमित्रा आज भी कुमार की प्रशंसक हैं। अभी-अभी उनके बन्दी हो जाने का समाचार सुनकर उन्होंने कहा था ··

अशोक : (**खोया-सा**) क्या कहा था ?

राधागुप्त : उन्होंने कहा था कि कुमार के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुष के साथ होता है।

अशोक : (**संभल कर**) महामात्य ! हमें देवी सघमित्रा के परामर्श की आवश्यकता नही है। हम जानते हैं कि हमें कब क्या करना होगा। कुमार हमारा शत्रु है और संघमित्रा जानती हैं कि शत्रु के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। तुम बन्दी को उपस्थित करो; हम उसकी बातें सुनेंगे।

राधागुप्त : जो आज्ञा, देव।

(राधागुप्त का गमन और रणवेश में संघमित्रा का प्रवेश)

संघमित्रा : भैया !

अशोक : कौन, सघमित्रा ! तुम इस समय यहाँ क्यो आई ?

संघमित्रा : सम्राट् से निवेदन करने कि गायिका आ गई है।

आज्ञा हो तो उपस्थित करूँ।

अशोक : इस समय नही, संघमित्रा ! मुझे कुछ आवश्यक काम है।

संघमित्रा : क्या मै जान सकती हूँ कि सम्राट् को इस संध्या-काल में क्या काम है ?

अशोक : तुम काम जानना चाहती हो। (**एकदम**)···नहीं संघमित्रा, मैं तुम्हें कुछ नहीं बता सकूँगा।

संघमित्रा : (**हँस कर**) बताने की कोई आवश्यकता नहीं, सम्राट् ! मै जानती हूँ···

अशोक : तुम क्या जानती हो ?

संघमित्रा : यही कि आप कलिग-कुमार के भाग्य का निर्णय करने जा रहे है। मैं आपसे केवल इतना निवेदन करूँगी कि आज आपके शौर्य की परीक्षा है।

अशोक : भारत-सम्राट् का शौर्य विश्व-विदित है। कुमार को मेरे चरणों में सिर झुकाना ही होगा।

संघमित्रा : और न झुकाया तो !

अशोक : तो यह तलवार उसे झुका लेगी।

(तलवार को म्यान में बजाता है)

संघमित्रा : (**काँप कर**) भैया !

अशोक : (**हँस कर**) काँप गई। क्या तुम्हें शस्त्रों से डर लगने लगा है ?

संघमित्रा : नहीं, मैं शस्त्रों से नही डरती, सम्राट् !

अशोक : तो कुमार की मृत्यु से डरती हो ?

संघमित्रा : नही सम्राट्, मुझे उसकी चिन्ता नही है ।

अशोक : तो फिर किस बात की चिन्ता है ?

संघमित्रा : मुझे सम्राट् की चिन्ता है । गलती से वह तलवार को शौर्य का प्रतीक समझ बैठे है ।

अशोक : तलवार नही तो शौर्य का प्रतीक और क्या है ?

संघमित्रा : हृदय ! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है सम्राट् ।

अशोक : हृदय की विशालता और उदारता····**(सहसा अट्ट-हास)** हृदय की विशालता और उदारता, जान पड़ता है कि कलिंग के उस भिक्षु का प्रभाव तुम पर भी पड़ा है, संघमित्रा ! आखिर तुम नारी हो और नारी की अवरोध शक्ति बड़ी दुर्बल होती है । लेकिन याद रखो, अशोक बौद्धों की इस दुर्बल नीति के बल पर भारत का सम्राट् नही बना है ।

संघमित्रा : लेकिन सम्राट्···

(किसी के आने का स्वर)

अशोक : **(शीघ्रता से)** तुम अब जा सकती हो, संघमित्रा ।

संघमित्रा : भैया !

अशोक : जाओ संघमित्रा ! भारत-सम्राट् अशोक तुम्हें जाने की आज्ञा देता है ।

संघमित्रा : **(जाती हुई)** जा रही हूँ सम्राट् । पर भूलिये नहीं

कि हृदय की विशालता का नाम ही शौर्य है।

(जाती है)

अशोक : (**स्वगत**) हृदय की विशालता का नाम शौर्य है। संघमित्रा ! मै जानता हूँ कि तुम क्या कहना चाहती हो। तुम कलिंग के युवराज से प्रेम करती हो। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकती पर युवराज मेरा शत्रु है और तुम मेरी बहन !

(राधागुप्त का कलिंग-कुमार के साथ प्रवेश। कुमार को दो सैनिकों ने पकड़ा है। अन्दर आते ही वे कुछ हट कर खड़े हो जाते हैं। कुमार रणवेश में दृढ़ता से खड़ा हो जाता है। वह युवक है। प्रशस्त ललाट, उन्नत वक्षस्थल, किंचित श्यामल वर्ण, अदम्य विश्वास से पूर्ण नयन और आजानुबाहु, एक साथ रक्षा और दण्ड के प्रतीक। उसे देख कर आँखे पलक मारना भूल जाती हैं।)

राधागुप्त : सम्राट् की जय हो ! कलिंग के राजकुमार उपस्थित है।

अशोक : (**कठोर स्वर में**) महामात्य, कलिंग का अब कोई राजकुमार नहीं है। यह एक साधारण बन्दी है।

कुमार : अशोक ! अपनी वास्तविक अवस्था में सभी साधारण होते है। तुम भी अशोक पहले हो, सम्राट् पीछे।

अशोक : (**कड़क कर**) बन्दी, तुम जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ?

कुमार : जानता क्यों नही । मैं मगध के हत्यारे सम्राट् चंडाशोक से बातें कर रहा हूँ, उस चंडाशोक से जिसने माँ वसुन्धरा को अपने लाखों पुत्रों का रक्त पीने के लिए विवश किया है ।

अशोक : (**क्रुद्ध**) बन्दी, कलिंग के लोगों की तरह तुम वाचाल ही नहीं, धृष्ट भी हो । इस असभ्यता का एक ही प्रतिकार मेरे पास है और वह है कटार ।

(कटार दिखाता है)

कुमार : हत्यारे के पास कटार के अतिरिक्त और भी कुछ होता है क्या ?

अशोक : बन्दी ! मै अभी तुम्हारा सिर काट सकता हूँ ।

कुमार : जो धरती माता अपने लाखों पुत्रों का रक्त पी चुकी है, वह अपने एक और पुत्र का रक्त पीयेगी तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा ।

राधागुप्त : धृष्टता की भी एक सीमा होती है कुमार ! होश में आकर बातें करो ।

कुमार : तुम्हें भी क्रोध आ गया, महामात्य ! आखिर हो तो विष्णुगुप्त चाणक्य के शिष्य । लेकिन सुन लो राधागुप्त! तुम्हारे इस हत्यारे सम्राट् को एक दिन इस रक्त प्लावन का बदला चुकाना होगा । उसका अपना हृदय उसकी भर्त्सना करेगा ।

अशोक : (**अट्टहास**) वही उपगुप्त का स्वर, वही बौद्ध-भिक्षु

की वाणी। बौद्धों की दुर्बल नीति के कारण ही तुम्हारा पतन हुआ है, बन्दी !

कुमार : मेरा पतन नही हुआ, अशोक। पतन तुम्हारा हुआ है।

अशोक : मेरा पतन ! भारत सम्राट् का पतन ! असम्भव ! बन्दी, असम्भव···

कुमार : असम्भव नहीं, अशोक ! वह पूरी तरह सम्भव हो चुका है। लाखों मानवों का रक्त तुम्हारे पतन की घोषणा कर रहा है। लाखों घायलों की कराह में तुम्हारे पतन का स्वर गूंज रहा है। ललनाओं की सूनी मांगों में, माताओं की खाली गोदियों में, शिशुओं की निरीह दृष्टि में, सब कही तुम्हारे पतन की कहानी अंकित है। कलिग के उजड़े हुए ग्राम, वीरान प्रदेश ये सब तुम्हारे पतन के साक्षी है। अशोक तुम जीत कर हार गये हो, कलिग मिट कर अमर हो गया है।

अशोक : अशोक हार गया है, कलिग अमर हो गया है। **(अट्टहास)**।

कुमार : हँस लो, जितना हँस सको हँस लो। मगध में तुम्हें यह हँसी नहीं मिलेगी। वहाँ के मार्ग रक्त से रंगे पड़े है। वहाँ तुम्हारे सिहासन के चारों ओर लाशों के ढेर लगे हुए हैं। वहाँ तुम्हारे बन्दी-घरों से लाखों बन्दियों की उठती हुई कराह ने सारे वातावरण को विषाक्त बना दिया है। अशोक, तुमने कलिग की धरती को जीता है,

उसकी आत्मा को नहीं। धरती की जीत को क्या तुम जीत कहते हो ?

राधागुप्त : जीत नही तो और क्या है ! आत्मा को किसने देखा है। शरीर सत्य है, उसी की जय सच्ची जय है। कुमार, तुम्हारे इस शब्द-जाल से तुम्हारी पराजय जय में नही पलट सकती।

कुमार : मेरी पराजय ! मुझे किसने पराजित किया है ?

राधागुप्त : भारत-सम्राट् महाराज अशोक ने।

कुमार : राधागुप्त ! जिस कलिग को सोलह राज्यों को उखाड़ फेंकने वाला तुम्हारा गुरु चाणक्य नहीं पराजित कर सका, जिसने सदा तुम्हारी सत्ता को चुनौती दी है, उसे कोई भी, कभी भी पराजित नही कर सकता। नही राधागुप्त ! कलिग के राजकुमार के शरीर में जब तक प्राण है तब तक उसे कोई पराजित नही कर सकता।

अशोक : **(तेजी से)** बन्दी ! तुम मुझे प्रणाम नहीं करोगे ?

कुमार : कलिग का राजकुमार कलिग के अतिरिक्त और किसी सिहासन के सामने झुकना नहीं जानता।

अशोक : लेकिन कलिग का सिहासन धूल में मिल चुका है। कलिग का स्वामी मै हूँ।

कुमार : कलिग के युवराज के रहते कलिग का स्वामी कोई नही हो सकता, अशोक।

अशोक : होने का प्रश्न नही है। कलिग का राजमुकुट मेरी

ठोकरों में लोट रहा है।

कुमार : ठोकर लगाना तो दूर की बात है उसकी ओर दृष्टि उठाने वाले की आँखें निकाल ली जाती है, अशोक।

राधागुप्त : बस करो, बन्दी, नही तो····

कुमार : नहीं तो तुम्हारा सिर काट लिया जायगा। **(अट्टहास)** तुम लोगों मे सिर काट लेने से अधिक कुछ करने की शक्ति है ही कहाँ ? तुम कायर हो। और कायर कभी किसी को पराजित नही कर सकते।

अशोक : महामात्य ! बन्दी से कहो कि वह व्यर्थ का वितंडा-वाद न उठा कर मेरी अधीनता स्वीकार करे। अशोक वीर पुरुषों को क्षमा करना जानता है।

कुमार : लेकिन वीर पुरुष किसी की क्षमा ग्रहण करना नही जानते। विश्वास रखो, कलिग का राजकुमार जीते जी वीरता को कलंकित नहीं करेगा।

(अशोक तिलमिलाता है)

अशोक : महामात्य, बन्दी से पूछो कि क्या यह उसका अन्तिम निर्णय है।

कुमार : वीर पुरुष दो बार नहीं सोचा करते।

अशोक : तब महामात्य ! बन्दी को ले जाओ और चंडगिरि से कह दो कि उषा की प्रथम किरण के साथ इसका सिर मेरे चरणों में लोटेगा।

राधागुप्त : सम्राट् की आज्ञा का पालन होगा, देव !

कुमार : बस। यही तुम्हारी वीरता है ? यही तुम्हारा शौर्य है ? इसी बल पर सम्राट् बने हो। एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते है लेकिन वह वीर पुरुषों का मार्ग नही।

(सहसा अशोक गरदन उठा कर कुमार को देखता है। देखता रह जाता है।)

राधागुप्त : बस कुमार, सम्राट् को उपदेश देने की धृष्टता मत करो। सैनिक, बन्दी को ले चलो।

कुमार : सैनिक मुझे क्या ले चलेंगे। मै स्वय चल रहा हूँ, महामात्य ! आओ।

(कुमार दृढ़ता से जाता है। पीछे-पीछे राधागुप्त है। अशोक कुछ क्षण उन्हें जाते देखता रहता है जैसे स्तम्भित हो गया हो। फिर अचानक बोल उठता है।)

अशोक : **(स्वगत)** कलिग के लोग कितने रूखे, कितने असभ्य होते है। बातें करना तक नही जानते। सब कुछ नष्ट हो गया है पर घमण्ड उसी तरह बना हुआ है। रस्सी जल गई है पर ऐठन शेष है। जैसे-जैसे मौत पास आती है वैसे-वैसे दृढ़ता बढ़ती है, साहस सिर उठाता है। **(हँस कर)** लेकिन अशोक को किसने जीता है। अशोक के क्रोध से कौन बचा है। सारा भारत चंडाशोक, क्रूरकर्मी, बल-पराक्रमी, चंडाशोक के नाम से

परिचित है। लेकिन वह राजकुमार कैसे ऐंठ कर कहता था—एक बन्दी का सिर नहीं झुका सके, खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते है····नहीं, नही। यह सब उसका शब्द-जाल था। पराजय की खीझ उतारने का उपक्रम था। लेकिन **(सहसा उद्विग्न होता है)** लेकिन आहतों का चीत्कार····बन्दियों की करुण पुकार····पीड़ित नागरिकों का हा हा कार···· उफ ! **(हृदय दबाता है)** अचानक यह क्या हुआ। हृदय में पीड़ा होती है, नेत्र मुदे जाते हैं। **(लड़खड़ाता है)** ओह ! यह क्या होने लगा, यह मुझे क्या····होने लगा ? यह मुझे कौन पुकार रहा है ? कौन मेरी हँसी उडा रहा है ? कौन है ?

(संघमित्रा का प्रवेश)

संघमित्रा : सम्राट् की जय हो।

अशोक : **(चौंक कर)** कौन ?

संघमित्रा : मैं।

अशोक : संघमित्रा !

संघमित्रा : हाँ सम्राट् ! कुमार के भाग्य का निर्णय कर चुके।

अशोक : **(संभल कर)** तुम उस बन्दी की बात कर रही हो। अच्छा हुआ संघमित्रा जो तुम्हारा विवाह उसके साथ नहीं हुआ। कलिंग के लोग बड़े धृष्ट होते हैं। मैं उसे क्षमा करने को तैयार था परन्तु वह किसी भी प्रकार

मेरी अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ।

संघमित्रा : अधीनता स्वीकार करने को उसके पास रखा ही क्या है। सारा देश श्मशान बन चुका है। वह उर्वर भूमि अपने हर्षोत्पल निवासियों के शवों से भरी पड़ी है। उसके मार्गों पर हृष्ट-पुष्ट और बहुमूल्य हाथियों के अग-अग बिखरे पड़े हैं और कलिंग के वे सुन्दर वस्त्र, जिनको आप और हम सब चाव से मंगा कर पहना करते थे, चीर-चीर होकर हवा मे उड़ रहे हैं। उफ····कितने लोग थे कलिग में ? मार्ग नही मिलता था पर अब····

अशोक : **(एक दम टोक कर)** तुम उसका देश देखने गई थीं, सघमित्रा !

संघमित्रा : जाना ही पड़ता है। जिस समय आपके शूरवीर सैनिक घरों से निकाल निकालकर उन भोले, सरल और निरपराध कलिग निवासियों का वध करते हैं, तो सम्राट्! महानाश का माथा भी शर्म से झुक जाता है।

अशोक : यह युद्ध है, संघमित्रा। और युद्ध में विरोधी का नाश ही किया जाता है।

संघमित्रा : जानती हूँ, सम्राट्। मैं विरोध नहीं करती। केवल सम्राट् के सैनिकों के कर्म का बखान करती हूँ।

अशोक : वे ठीक करते हैं। उन्हें यही आज्ञा है।

संघमित्रा : सम्राट् के सैनिक आज्ञाकारी हैं, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चों और औरतों को भी वे घर में नहीं छोड़ते।

उन्हें बाहर निकाल कर घरों में आग लगा देते हैं। इसलिए कुमार ने गलती की जो श्मशान के लिए सिर दिया।

अशोक : तो तुम जानती हो कि मैने बन्दी का सिर काट लेने की आज्ञा दी है।

संघमित्रा : जानती तो नही पर कल्पना कर सकती हूँ। बचपन से आपको पहचानती हूँ। राजगद्दी भी तो आपने बड़े भैया सुसीम से सिर का सौदा करके जीती है। औरों की भाँति विरासत में नही पाई। विरासत एक प्रकार का दान है और दान लेना वीरता का अपमान है।

अशोक : (**छटपटा कर**) गद्दी की तो यहाँ कोई चर्चा ही नही थी, संघमित्रा !

संघमित्रा : गद्दी तो गौण है, भैया। चर्चा आपके स्वभाव की है। कुमार को प्राण दण्ड देकर आपने, राजसत्ता की ही नही, अपने स्वभाव की मर्यादा की भी रक्षा की है।

अशोक : (**तेज स्वर**) स्वभाव की मर्यादा ! संघमित्रा ! अशोक शक्ति में विश्वास रखता है। दया और करुणा को वह साम्राज्य का शत्रु मानता है। सुसीम पिता के राज्यकाल में भी तक्षशिला का विद्रोह नहीं शान्त कर सका था। वह बौद्धों की दुर्बल नीति का पक्षपाती था। वह मानवता की पुकार जैसी काल्पनिक भावनाओं में विश्वास करता था।

संघमित्रा : निःसन्देह बड़े भैया सम्राट् होने के लिए नहीं थे। वे गद्दी पर बैठते तो मौर्यो की राज्य-पताका कैसे चारों दिशाओं में फहराती ? देश कैसे 'विजित' होते ? धरती माता कैसे अपनी सन्तान का रक्त पीती ? आकाश कैसे मानव चीत्कार का सगीत सुनता ?

अशोक : तुम जानती हो कि चीत्कार में भी संगीत होता है।

संघमित्रा : होता है सम्राट् ! उसी को सुनकर तो मनुष्य जीवन से डरना सीखता है।

अशोक : (**हँस कर**) शब्दों का मायाजाल ! वही शब्दों का मायाजाल। संघमित्रा, जो जीवन से डरेगा वह जियेगा कैसे ?

संघमित्रा : जैसे सम्राट् जीते है, जैसे सम्राट् के सैनिक जीते है।

अशोक : जैसे सम्राट् जीते है ? यानी जैसे मै जीता हूँ ?

संघमित्रा : हाँ सम्राट्।

अशोक : सघमित्रा ! तुम भी उन बौद्धों से हेल-मेल बढ़ाने लगी हो। तभी यह रहस्यमयी भाषा बोलती हो। बन्दी भी कुछ इसी प्रकार कहता था।

संघमित्रा : बन्दी क्या कहता था, सम्राट् ?

अशोक : वह कहता था कि तुम कैसे वीर हो जो एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते हैं **(खोखली हँसी)**

यह सब वाग्जाल है। भुजबल ही सबसे बड़ा शौर्य है। हृदय और आत्मा की बाते नारी और भिक्षुओं के लिए हैं।

संघमित्रा : **(हँस कर)** धन्यवाद भैया ! नारी को आपने भिक्षुओं के समकक्ष माना, लेकिन एक बात पूछूं, सम्राट् ?

अशोक : पूछो संघमित्रा ! **(निश्वास)** बात पूछने को तो आज मेरा भी मन करता है।

संघमित्रा : आपका मन बात पूछने को करता है ?

अशोक : करता तो है···

संघमित्रा : तो फिर पूछिये न। मैं तो सदा आपको तग करती रहती हूँ। आप क्या पूछना चाहते है, सम्राट् ?

अशोक : कुछ नही, संघमित्रा। कुछ नहीं, तुम पूछो।

संघमित्रा : **(जोर देकर)** आप ही पूछिए, सम्राट्।

अशोक : संघमित्रा !

संघमित्रा : आप कुछ पूछना चाहते हैं, सम्राट्। पूछिये—

अशोक : पूछूं ?

संघमित्रा : अगर मुझे किसी योग्य समझते हो, तो पूछो।

अशोक : नहीं, यह बात नहीं है, संघमित्रा। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी का वध करने की कोई और रीति भी होती है ?

संघमित्रा : समझी नहीं, सम्राट्। और रीति से आपका क्या आशय है ?

अशोक : जिसका वध करना हो उसके प्राण न निकलें पर वह मर जाय ।

संघमित्रा : ऐसी रीति ! नही भैया, मैं तो ऐसी रीति नही जानती । शस्त्र बांधने वाला कोई जानता भी न होगा ।

अशोक : अच्छा तो जाने दो ··लेकिन हाँ, संघमित्रा ? शस्त्र बाँधने वाला कायर होता है क्या ?

संघमित्रा : नहीं तो, आपको अचानक यह क्या होने लगा ? आप ऐसे प्रश्न क्यों पूछते है ?

अशोक : **(काँप कर)** न जाने····न जाने **(दृढ़ होकर)** नहीं, नही, मुझे कुछ नहीं हुआ । ऐसे ही कुछ याद आ गया था । कोई बात नही है । बात यह है कि अब हम शीघ्र सिहल-विजय के लिए चलेगे ।

संघमित्रा : सच !

अशोक : हाँ ।

संघमित्रा : मैं भी चलूँगी ।

अशोक : अवश्य चलना । वह बहुत सुन्दर देश है ।

संघमित्रा : और हम सौन्दर्य के उपासक हैं, उसे चाट जाने वाले **(हँस कर)** अच्छा, मैं रेवा को बुला लाऊँ । आप थक गये होंगे ?

अशोक : नहीं, नहीं, संघमित्रा ! मैं गाना सुनना नहीं चाहता । मैं अब कभी गाना नहीं सुनूंगा ।

संघमित्रा : **(सहसा रुक कर)** आप अब गाना नहीं सुनेंगे ?

क्यों ? क्या हुआ ?

अशोक : कुछ नही, संघमित्रा ! हुआ तो कुछ नहीं लेकिन··· लेकिन· · ·।

संघमित्रा : लेकिन क्या···

अशोक : सघमित्रा ! जब रेवा गाती है, तो न जाने क्यों मुझे युद्ध-भूमि का दृश्य दिखाई देने लगता है । मैं तब उसके मादक संगीत में घायलों का चीत्कार सुनने लगता हूँ। मेरे कानों में उस समय बन्दियों की करुण पुकार गूंज उठती है। **(उत्तेजित हो जाता है)** संघमित्रा···संघमित्रा ! युद्ध में इतने आदमी मरते क्यों है, युद्ध होते क्यों है ?

संघमित्रा : भैया···भैया···यह आपको क्या हो गया है ? आप अस्वस्थ है । आपका मन दुखी है । आपको संगीत की आवश्यकता है । मै अभी रेवा को भेजती हूँ ।

(संघमित्रा का शीघ्रता से गमन)

अशोक : **(उसी तरह अनमना-सा)** क्यों इतने आदमी मरते हैं ? क्यों इतना रक्त बहता है संघमित्रा ! बन्दी कहता था कि मैने धरती माता को उसके अपने बेटों का रक्त पीने को विवश किया है । अपने बेटों का रक्त । कोई अपने बेटों का रक्त पीता है ? क्यों संघमित्रा, **(जोर से)** संघ-मित्रा···**(संभल कर देखता है । कोई नहीं दिखाई देता)**

अशोक : गई । महामात्य कहते थे, कि यह कलिग के युवराज की बड़ी प्रशंसा कर रही थी । कुमार की प्रशंसा तो मैने

भी की थी। वह है भी अनुपम वीर। उस दिन आखेट में उसका हस्तलाघव देखा था। अब इस महानाश में उसका अदम्य साहस देखा। मैं चाहता, तो उसी क्षण उसका सिर काट लेता। लेकिन···लेकिन! साहसी मनुष्य के सामने आकर मौत भी अपना काम भूल जाती है। उसका साहस भी अंगद के पैर के समान मेरे क्रोध के सामने डटा रहा। यही नहीं, उसने मुझे चुनौती दी। "बस एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड श्मशान में घूमा करते हैं।" मै एक बन्दी का सिर नही झुका सका, एक बन्दी का। मैं, जिसके इंगित पर लक्ष-लक्ष सिर पैरों को चमते है, जिसकी भृकुटि पर काल काँप उठता है, जिसके क्रोध की ज्वाला में विश्व भस्म हो सकना है, वह एक सिर नही झुका सका। क्या सचमुच मै इतना निर्बल हूँ? क्या मेरी शक्ति कायर की शक्ति है, कायर! हाँ, गीदड़ कायर ही होता है। कुमार ने मुझे गीदड़ कहा। खोपड़ी ठुकराने वाला गीदड़। मै खोपड़ी ठुकराता हूँ, मैं खोपड़ी ठुकराता हूँ···(**गहरा उच्छ्वास**) मैं खोपड़ी ठुकराता हूँ, ठीक तो है। मै उसका सिर नही झुका सका। संघमित्रा भी कहती थी कि शौर्य तलवार में नही होता···शायद वह ठीक कहती है। तलवार में शौर्य नहीं होता। तभी तो मै जीते जी उसका सिर नही झुका सका। अब उसका

सिर काट कर उससे बदला लेना चाहता हूँ। सिर काट कर···उसके सिर को ठुकरा कर···गीदड़ भी निर्जीव सिर को ठुकराता है। मै गीदड़ हूँ। हाँ, मैं गीदड़ हूँ। मैं एक बन्दी का सिर नही झुका सकता।

(राधागुप्त का प्रवेश)

अशोक : (चौंक कर) कौन, महामात्य ?

राधागुप्त : सम्राट् की जय हो, एक बौद्ध भिक्षु आपसे मिलना चाहते हैं।

अशोक : (नम्र स्वर) बौद्ध भिक्षु को अभी रहने दो। मैं तुमसे पूछता हूँ—कुमार यही कहता था न कि मै एक बन्दी का सिर नही झुका सका।

राधागुप्त : देव ! बन्दी का सिर कुछ ही घंटों में आपके चरणों में लोटेगा।

अशोक : यही तो, वह यही तो कहता था। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते है। गीदड़ कायर होते है, महामात्य ! कायर पुरुष को ही तो गीदड़ कहते है।

राधागुप्त : (धीरे से) सम्राट् आपका चित्त ठीक नहीं है। आज क्या कोई गायिका नहीं आई ? रेवा कहाँ है ?

अशोक : राधागुप्त, संघमित्रा कहती थी कि वीर पुरुष जिस संगीत को सुना करते हैं, वह घायलों की चीत्कार और बन्दियों की करुण पुकार से उठता है। लेकिन महामात्य,

मै तुमसे पूछ रहा था कि क्या मै बन्दी का सिर नहीं झुका सकता ? क्या उसका सिर काटना ही होगा ?

राधागुप्त : जो भारत-सम्राट् की आज्ञा नही मानता उसका सिर काट लेना ही उचित है ।

अशोक : लेकिन महामात्य ! आज्ञा तो वह फिर भी नहीं मान सकेगा ।

राधागुप्त : सम्राट् ! यदि वह आज्ञा मानता, तो उसे दण्ड क्यों मिलता ?

अशोक : यही तो संघमित्रा कहती थी कि तलवार में शौर्य नहीं होता, वह हृदय में होता है । क्यों महामात्य ! तुम हृदय की शक्ति को जानते हो ।

राधागुप्त : मै हृदय की शक्ति को नही जानता, देव ! पर संगीत की शक्ति को अवश्य जानता हूँ । मैं अभी उसका प्रबन्ध करता हूँ ।····**(जाता है, फिर रुकता है)**····ओह, मै भूल गया सम्राट्, द्वार पर एक भिक्षु खड़े है ।

अशोक : भिक्षु, मुझसे मिलने आये है, इस समय ?

राधागुप्त : सम्राट्, वह कलिंग कुमार से भेंट करना चाहते है ।

अशोक : किसलिए ?

राधागुप्त : शायद वह कुमार को····

अशोक : **(एकदम)** शायद वह कुमार को मेरी अधीनता स्वीकार करने के लिए राजी करना चाहते हैं । **(हँस कर)**

महामात्य, जो काम मैं नहीं कर सकता उसे शस्त्र कर सकते हैं। भिक्षु कर सकते हैं। यह कैसी विडम्बना है? यह कैसी शक्ति है? मैं इतना दुर्बल हूँ, फिर भी सम्राट् हूँ।....नही, नहीं, महामात्य! मैं वह शक्ति चाहता हूँ जिसके द्वारा बन्दी का सिर झुका सकूँ। क्या वह शक्ति मुझे मिल सकती है?

(महेन्द्र का प्रवेश)

महेन्द्र : अवश्य मिल सकती है, सम्राट्! शर्त केवल इच्छा की है।

अशोक : कौन? महेन्द्र!

महेन्द्र : आज्ञा, सम्राट्!

अशोक : सम्राट्, सम्राट्! महेन्द्र तुम भी मुझे सम्राट् कहोगे?

महेन्द्र : जो आज तक कहता आया हूँ। उसको अचानक बदल देने का कोई कारण दिखाई नहीं देता, सम्राट्!

अशोक : ठीक है, महेन्द्र। तुम ठीक कहते हो, परन्तु तुम नहीं जानते उस बन्दी कुमार ने मुझसे कहा था कि सबसे पहले हम सब साधारण पुरुष हैं। मैं अशोक पहले हूँ, सम्राट् पीछे।

महेन्द्र : **(हँस कर)** और सम्राट् ने उनकी बात मान ली।

अशोक : तब तो नहीं मानी थी पर अब मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मुझे कोई अशोक कह कर पुकारे।

महेन्द्र : **(राधागुप्त की ओर मुड़कर)** सम्राट् आज कुछ दीन

दिखाई दे रहे हैं, महामात्य ! ऐसा क्यों ?

अशोक : महामात्य को कुछ पता नहीं, महेन्द्र । वह मेरी वाणी है। सच पूछो तो मुझको भी कुछ पता नहीं। मुझे उस बन्दी ने दया का पात्र बना दिया है। मेरा हृदय जल रहा है। मुझे लगता है कि जैसे मैं अकेला हूँ, जैसे मैं एक दुर्बल प्राणी हूँ।

महेन्द्र : भैया, यह तुम क्या कह रहे हो ?

अशोक : **(भावावेश)** भैया ! महेन्द्र, एक बार फिर कहो तो 'भैया'।

महेन्द्र : भैया !

(सम्राट् अशोक नेत्र मूंदते हैं)

राधागुप्त : सम्राट् ! भिक्षु के लिए क्या आज्ञा है !

अशोक : **(सहसा संभलकर)** ओह भिक्षु ! उन्हें आने दो लेकिन महामात्य, उनके आने से पहले मुझे यह बताओ कि क्या मै कुमार के दड पर फिर से विचार कर सकता हूँ ?

राधागुप्त : सम्राट् सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु उन्हें अपने पद की मर्यादा को समझ लेना चाहिए।

अशोक : क्या कहा कि मुझे अपने पद की मर्यादा को समझ लेना चाहिए। तो महामात्य, मै सम्राट् न हुआ, एक बन्दी हुआ।

(उपगुप्त का प्रवेश)

उपगुप्त : जब तक व्यक्ति अपने लिए जीता है, तब तक वह

बन्दी ही रहता है। आकांक्षा की परिधि सीमित होती है परन्तु उसकी प्यास बड़ी भयंकर होती है, महाराज ! मकड़ी के जाले के समान उसमें फँस कर कोई जीवित नहीं रहा है।

अशोक : भिक्षु उपगुप्त ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, भन्ते !

उपगुप्त : महाराज का कल्याण हो ! मैं कलिंग-कुमार से मिलना चाहता हूँ।

अशोक : महामात्य ने मुझे अभी बतलाया था, लेकिन मुझे लगता है कि कुमार से अधिक मुझे आपकी मंत्रणा की आवश्यकता है।

उपगुप्त : आपको मेरी मंत्रणा की आवश्यकता है ?

अशोक : हाँ भन्ते !

उपगुप्त : पूछो। क्या जानना चाहते हो ?

अशोक : भन्ते ! क्या कोई ऐसी शक्ति है जो बिना नाश किये विरोधी को पराजित कर सके।

उपगुप्त : किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है, महाराज।

अशोक : **(दोहराता हुआ)** किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

(कई बार दोहराता है)

उपगुप्त : सम्राट् रात बीत रही है। क्या मैं···।

अशोक : **(एकदम)** रात बीत रही है। सच, क्या रात बीत रही है। भन्ते ! आपने कितनी सुन्दर बात कही है। रात बीतती है, तभी प्रभात होता है।

उपगुप्त : लेकिन आज का प्रभात किसी की मृत्यु का संदेश लेकर आ रहा है, सम्राट्।

अशोक : आप कलिंग के युवराज की बात कर रहे हैं, भन्ते। वह मृत्यु और जीवन से परे है। मैं उन्हें दंड देने का साहस नही कर सकता। वे स्वतंत्र हैं।

(सब स्तम्भित होते हैं)

राधागुप्त : सम्राट् क्या कहते हैं ?

अशोक : सुनो महामात्य, कलिंग-कुमार मुक्त ही नहीं हैं वह अपने राज्य के स्वामी भी हैं ?

महेन्द्र : **(अचरज)** भैया ! क्या आप सच कह रहे हैं ?

उपगुप्त : महाराज, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ?

अशोक : जो कुछ आप सुन रहे हैं वह ठीक है। परन्तु ऐसा क्यों हो रहा है, यह मैं स्वयं भी नहीं जानता। रह-रह कर कलिंग-कुमार की बातें मुझे याद आ रहीं हैं। रह-रह कर रणभूमि का चित्र मेरे नयनों में उभर आता है। रह-रह कर चीत्कार का संगीत मेरे कानों में गूंज उठता है। मैं अब गीदड़ बन कर श्मशान में खोपड़ी नहीं ठुकराना चाहता। मैं मानव बन कर मानव को जीतना

चाहता हूँ। मैं कलिग-कुमार को बताना चाहता हूँ कि मैं भी मानव हूँ। **(शान्त उच्छ्वसित स्वर)** मै भी मानव हूँ। **(सब स्तम्भित, चकित, पर प्रसन्न मुद्रा में, अशोक को देखते हैं।)**

महेन्द्र : भैया ! आपने आज जो काम किया है वह मानव ही कर सकते हैं। आपकी जय हो। आइए आचार्य, हमें शीघ्र ही बन्दी-गृह में जाकर कलिग-कुमार को यह शुभ समाचार देना चाहिए।

उपगुप्त : चलो महेन्द्र ! चलो।

(महेन्द्र और उपगुप्त का गमन)

अशोक : कलिग-विजय अब हुआ है।

राधागुप्त : लेकिन सम्राट्! यह क्या उचित हुआ ? यह क्या···

अशोक : **(हँसता हुआ)** राधागुप्त ! इस समय मै तुमसे विवाद करना नही चाहता। मै स्वयं नही जानता कि यह उचित है अथवा अनुचित, परन्तु मुझे लग रहा है कि मैं ऐसा न करता तो पागल हो जाता। अब मै कलिग के युवराज से मिलना चाहता हूँ। देखो सघमित्रा दिखाई दे तो उसे बुला लो, और तुम भी चलो। मै देवी कारुवाकी के शिविर में जाता हूँ, वहीं राह देखूंगा।

राधागुप्त : जो आज्ञा, देव !

(दोनों दो ओर जाते हैं। क्षणभर मंच पर शांति रहती है फिर धीरे धीरे परदा गिर जाता है।)

दूसरा अंक

(रानी कारुवाकी का शिविर। राजसी वैभव की कमी नहीं है। फर्श पर बहुमूल्य कालीन बिछे हैं। भित्तियों पर कला-पूर्ण चित्र हैं। एक ओर एक चित्रपट पर अधूरा चित्र दिखाई देता है। उसके पास चौकी पर प्रसाधन भी है। कोनों में सुगन्धित द्रव्यों के पात्र रखे हैं। एक ओर सुन्दर शैया पर तोषकों के सहारे रानी कारुवाकी दाहिने हाथ पर मस्तक टिकाए लेटी है। उनकी वेणी वक्षस्थल पर उरोजों के बीच आ गई है। करधनी का अग्रभाग शैया पर लटक गया है। द्वार के पास जो बहुमुखी दीप जल रहा है उसका काँपता हुआ प्रकाश उनके मुख पर धूप-छाँव का खेल खेल रहा है। उनका वर्ण गौर है। श्याम वर्णी नयन किंचित लम्बे हैं जो इस समय कहीं दूर देख रहे हैं। हाथ के अग्र भाग तथा पैरों पर मेंहदी जैसे पदार्थ से चित्रकारी की गई है। उनके सामने दीपक के पास एक आसन बिछा है, जिस पर वीणा लिये रेवा गा रही है। उसी को सुनती-सुनती वे तन्मय हो जाना चाहती हैं पर रह-रह कर चौंक उठती हैं। रेवा के स्वर में यथेष्ट माधुर्य है और गति में सरसता। पर इस समय उन्हें कुछ भी सन्तुष्ट करता नहीं जान पड़ता।)

गीत

नैश कमल की कारा में क्यों भौंरा जाग रहा ?
क्यों भौंरा जाग रहा ?
अलस कमलिनी, मुकुलित पलकें,
उलझ रहीं सौरभ की अलकें,
मधु सपनों की कुंजगली में बरस विहाग रहा !
क्यों भौंरा जाग रहा ?
सखि, कितनी उन्मद मनुहारें,
ज्यों प्राणों को प्राण पुकारें,
चरणों में सर्वस्व समर्पित, अब क्या माँग रहा ?
क्यों भौंरा जाग रहा ?
मुँदे नयन, औ' चाँद सितारे,
बुझे दीप धरती के सारे,
पंखुड़ियों के रंगमहल में जग अनुराग रहा !
क्यों भौंरा जाग रहा ?

(सहसा कारुवाकी गीत समाप्त करने का इशारा करती है)

कारुवाकी : बस करो रेवा । बस, अब बन्द करो । यह राग और अनुराग की बातें अब अच्छी नहीं लगतीं ।

(रेवा वीणा बजाना बन्द करती है)

रेवा : महारानी कुछ अस्वस्थ हैं । आज्ञा हो तो कोई और सरस गीत गाऊँ !

कारुवाकी : नहीं रेवा, अब नहीं। तुम जितना सरस गीत गाती हो मन उतना ही विरस होता है। **(निश्वास)** न जाने यह युद्ध कब समाप्त होगा ? मरे हुए लोगों की संख्या गिनते-गिनते ऐसे लगने लगा है कि जैसे हम सब मरे हुए हैं क्योंकि उनके सामने जो जीते हैं उनकी तो कोई गिनती ही नहीं है।

रेवा : **(मुस्करा कर)** महारानी सुना है कि जब प्रत्येक नया व्यक्ति इस लोक में आता है तो विधाता उसे मृत्यु का दण्ड सुना कर भेजते हैं।

कारुवाकी : **(हँस कर)** ओह यह बात है। तभी इसे मृत्युलोक कहते हैं। मैं आज महाराज को धन्यवाद दूंगी कि वह इतने आदमियों का वध करवा कर विधाता का काम हल्का कर रहे हैं। **(सहसा हँसी विषाद में बदल जाती है)** पर····पर रेवा मुझे तो लगता है····

(उठ कर खड़ी हो जाती है और वातायन से बाहर झाँकती है)

रेवा : आपको क्या लगता है, महारानी !

(वह भी उठती है)

कारुवाकी : यही कि विधाता का काम मनुष्य को नहीं करना चाहिए। युद्ध बन्द होने चाहिएँ।

रेवा : कलिंग का युद्ध तो आज समाप्त हो गया, महारानी ! युवराज के बन्दी हो जाने के बाद कौन बचा है जो अब

भेरी-घोष करेगा। जो युद्ध के भोजन बन सकते हैं वे मनुष्य तो सब पहले ही मर चुके हैं।

कारुवाकी : ठीक है रेवा, परन्तु कलिंग-विजय हो जाने से युद्ध बन्द होने की कोई आशा नहीं है। अभी सिंहल-विजय शेष है। फिर कलिंग तथा सिंहल के बीच में कितने ही और देश हैं। उनमें कितने ही लाख नर-नारी बसते हैं। उन सबकी हत्या····उफ। विधाता इस संसार को एक बार ही क्यों नहीं नष्ट कर देता।

रेवा : (**खोई-खोई**) हाँ महारानी ! मनुष्य की मनुष्य द्वारा हत्या करवा कर न जाने विधाता को क्या रस आता है।

कारुवाकी : (**दूर झाँकती हुई**) मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे विधाता है ही नहीं····

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : महारानी की जय हो !

कारुवाकी : क्या है ?

प्रतिहारी : सम्राट् पधारने वाले हैं, महारानी।

कारुवाकी : बहुत अच्छा।

(प्रतिहारी लौट जाता है)

कारुवाकी : सम्राट् पधार रहे हैं। रेवा, तुम बराबर के प्रकोष्ठ में ठहरो। हो सकता है कि तुम्हारी आवश्यकता पड़े। कुछ समय पूर्व उनके शिविर से समाचार मिला था कि वह आज बहुत उद्विग्न हैं। यूं तो वह कई दिन से

खिन्न हैं पर आज सुना है कि कलिंग के युवराज ने उन्हें बहुत विचलित कर दिया है।

रेवा : जो आज्ञा देवी !

(जाती है। महारानी वातायन से हट कर मंच के द्वार की ओर बढ़ती है, तभी दूसरी ओर से सम्राट् अशोक प्रवेश करते हैं। मुखमुद्रा बहुत प्रसन्न न होकर भी खिन्न नहीं है। पदचाप सुन कर महारानी मुड़ती है। मुस्कराती है।)

कारुवाकी : महाराज की जय हो। पधारिये। आज तो बहुत असमय हो गया है। महाराज का चित्त तो प्रसन्न है।

अशोक : **(पास आकर)** युद्ध में चित्त की प्रसन्नता सापेक्ष होती है देवी। मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं प्रसन्न हूँ या खिन्न हूँ। विशेष कर जो कुछ मैं अब कर आया हूँ, उसने मुझे दुविधा में डाल दिया है।

(शैया पर बैठ जाता है, महारानी खड़ी रहती हैं)

कारुवाकी : अब आप क्या कर आए हैं, मैं सुन सकती हूँ। रेवा कह रही थी कि कलिंग के युवराज बन्दी हो चुके हैं।

अशोक : वही तो। उसी की तो बात है।

कारुवाकी : क्या बात है। उसका पकड़ा जाना तो एक तरह से अच्छा ही हुआ। युद्ध समाप्त हो गया। दस दिन से मरने-जीने वालों की संख्या सुनते-सुनते जी ऊब उठा था।

अशोक : तुम्हारा जी भी ऊब उठा था ?

कारुवाकी : सभी का ऊब उठा होगा, स्वामी ! वह बात ही ऐसी थी। शस्त्रों की खटपट, असहाय घायलों की करुण पुकार, चिताओं से उठता हुआ आहों का धुआँ, उनके ऊपर मंडराता हुआ जय घोष ! तब कुछ ऐसा लगता था जैसे···

अशोक : जैसे···रुक क्यों गई देवी ! बताओ तब कैसा लगता था।

कारुवाकी : जैसे किसी माँ के इकलौते पुत्र की शवयात्रा का जुलूस निकल रहा हो।

(कहकर स्वयं काँप उठती है। महाराज के मुख पर कई रंग आते और जाते हैं)

अशोक : **(धीमा स्वर)** ठीक ऐसा ही देवी। ठीक ऐसा ही मुझे भी लगता था।

कारुवाकी : **(चकित)** आपको भी ऐसा ही लगा था ?

अशोक : हाँ देवी। ऐसा ही लगा था और जब युवराज ने मुझे गीदड़ कहा तो मेरा सन्देह और भी दृढ़ हो गया।

कारुवाकी : **(काँप कर)** क्या···यह क्या कहा आपने, स्वामी ?

अशोक : **(उसके कम्पन को देखकर मुस्कराता है)** गीदड़ ! श्मशान में खोपड़ी को ठुकराने वाला गीदड़ !

कारुवाकी : **(आवेग)** यह कहा उसने ? कलिंग के युवराज ने भारत-सम्राट् को यह कहा ? और वह जीवित रहा।

उसका इतना साहस। उसका सिर नहीं उड़ा दिया आपने।

अशोक : सिर उड़ा देने की आज्ञा सुनने पर ही तो उसने मुझे गीदड़ कहा। उसने कहा—बस यही है तुम्हारी वीरता। यही है तुम्हारा शौर्य, इसी बल पर सम्राट् बने हो। एक बंदी का सिर नहीं झुका सके। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते है। लेकिन वह वीर पुरुषों का मार्ग नहीं है।

कारुवाकी : (चकित फुसफुसाती है) एक बंदी का सिर नहीं झुका सके। खोपड़ी ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते हैं लेकिन वह वीर पुरुषों का मार्ग नही है···वीर पुरुषों का मार्ग **(एकदम)** फिर आपने क्या किया ?

अशोक : फिर मैंने उसको दिये गए मृत्यु-दण्ड की आज्ञा वापिस ले ली।

कारुवाकी : (और भी चकित) क्या···क्या कहा आपने ?

अशोक : यही कि मैंने मृत्यु-दण्ड की आज्ञा वापिस ले ली और उसका राज्य उसे लौटा दिया।

(अचरज से रानी के नेत्र फैल जाते हैं। हतभाग्य-सी वह कभी सम्राट् को, कभी दीपक के कम्पित प्रकाश को देखती है। फिर फुसफुसाती है।)

कारुवाकी : (जैसे अपने से बोलती है।) मृत्यु-दण्ड की

आज्ञा वापिस ले ली। उसका राज्य उसे लौटा दिया ···उसका राज्य उसे लौटा दिया। जिस राज्य के लिए लाखों मानवों का रक्त बहा, लाखों ललनाओं की सुहाग की लाली पुछी, लाखों माताओं की गोद सूनी हो गई। जिस राज्य के लिये नगर वीरान हो गए, भवन खण्डहर बन गए, पृथ्वी और आकाश अनाथों, अपाहिजों, अनाहतों की आहों से काँप उठे, वही राज्य आपने उसे लौटा दिया। इतना बड़ा मरण त्यौहार मनाकर, इतनी बड़ी दानवी लीला के बाद, वही रक्तरंजित राज्य आपने उदारता-पूर्वक उसे लौटा दिया।

अशोक : (अनबूझ सा) हाँ, हुआ तो यही पर नहीं जानता यह ठीक हुआ या गलत। शायद गलत हुआ। मैं युद्ध के परिणाम से डर गया। मेरी प्रचण्डता जैसे युद्ध की ज्वाला में झुलस कर रो पड़ी। न जाने यह सब कैसे हो गया ? मुझे स्वयं विश्वास नही आता। शायद तुम्हें भी नहीं आ रहा है। बात कुछ ऐसी ही है। मगध का प्रतापी सम्राट्···

कारुवाकी : (एकदम) नहीं, नहीं, सम्राट्। मैं यह नही कहती। मैं तो···मैं तो केवल यह जानना चाहती थी कि यह सब क्या हो गया ?

अशोक : (मुस्कराकर) और क्यों हो गया ? यह नही जानना चाहती। देवी, ठीक यही प्रश्न मैं अपने से पूछ

रहा हूँ कि अशोक, तूने यह सब क्यों किया ?

कारुवाकी : (चकित) क्यों किया ?

अशोक : (दृढ़ता) क्योंकि मैं कलिंग के युवराज से पराजित होना नहीं चाहता था। क्योंकि मैं उसका सिर झुकाना चाहता था, काटना नही चाहता था।

कारुवाकी : सिर झुकाना चाहते थे, काटना नही चाहते थे। स्वामी, आज कौन-सी भाषा बोल रहे है। दस दिन से जो कुछ मैं सुन रही थी वह रक्त और ज्वाला की भाषा थी। आज श्मशान में बसन्त विहाग का राग कैसे छिड़ गया ?

अशोक : देवी का व्यग समझता हूँ। परन्तु प्रिये। मैं महत्वाकांक्षी हूँ मैं विजय चाहता हूँ, किसी भी मूल्य पर विजय। मेरे नाम से गान्धार से लेकर केरल तक, कामख्या से लेकर सौराष्ट्र तक, सारा देश काँपता है। मैंने कलिंग को पराजित करने का निश्चय किया है। उस कलिंग को जिसने शक्तिशाली नन्दों की शक्ति को खण्ड-खण्ड कर दिया था, जिसने मेरे प्रतापी पिता और पितामह के सामने नतमस्तक होने से इन्कार कर दिया था। जिसने सोलह राज्यों को उखाड़ फेंकने वाले महामति चाणक्य की बुद्धि को चुनौती दी थी, उसी कलिंग को मैं मौर्य साम्राज्य में लय कर देना चाहता हूँ। उसके पराभव के बिना मौर्य साम्राज्य का एकीकरण असम्भव था। इसी बात के लिए

मैंने उसके वैभव को धूल में मिला दिया। उसके शरीर को खण्ड-खण्ड कर डाला···पर··· **(निश्वास)**

कारुवाकी : पर क्या स्वामी !

अशोक : पर मै उसे अपना नहीं बना सका। मेरे हृदय में एक ऐसी ज्वाला झुलस रही है जो जयजय-कार का उपहास करती हुई मानो मुझ से कहती है—अशोक, जो कुछ तुमने किया है एक दिन उसके लिए तुम खून के आँसू बहाओगे, तुम्हारी आत्मा तुम्हें धिक्कारेगी। **(एकदम)** नहीं, नहीं मैं यह स्थिति नही चाहता। मैं उसे अपना बनाना चाहता हूँ। मैं गीदड़ बनकर श्मशान में खोपड़ी नही ठुकराना चाहता। मैं जीतना चाहता हूँ। मैं हारना नहीं चाहता।

कारुवाकी : स्वामी ! स्वामी !! आप अस्वस्थ हैं।

अशोक : नहीं जानता कि मैं अस्वस्थ हूँ या स्वस्थ। पर मैं हारना नहीं चाहता। इसीलिए मैंने कुमार को क्षमा कर दिया और उसका राज्य उसे लौटा दिया। यही नहीं, मैंने एक और निश्चय किया है।

कारुवाकी : क्या निश्चय किया है ?

अशोक : मैंने निश्चय किया है कि यदि सघमित्रा चाहे तो युवराज को अपना पति वरण कर सकती है।

कारुवाकी : **(ठगी-सी)** स्वामी·····स्वामी·····जेठ की तपती दोपहरी में सावन की पूर्वी वायु के झोंके ! रौरव नरक में स्वर्ग की सुगन्ध ! विश्वास नहीं आता, देव !

अशोक : विश्वास करने के लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी, देवी। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैंने यह ठीक किया न ? मेरे अन्तर में कोई दुर्बलता तो नहीं घुस बैठी। अब भी समय है। महेन्द्र और भिक्षु उपगुप्त युवराज को लेने गए हैं। राधागुप्त संघमित्रा को देखने गया है। वे आते ही होंगे। उन सब के आने से पूर्व मैं अपनी दुर्बलता को जान लेना चाहता हूँ। **(किसी के आने का स्वर)** ओह् वे आगए।

कारुवाकी : कौन है ?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : महाराज की जय हो। सेनापति ने संदेश भेजा है।

अशोक : सेनापति ने सन्देश भेजा है ? क्या ?

प्रतिहारी : उन्होंने अभी कुछ समय पूर्व रणभूमि से एक भिक्षुणी को बन्दी बनाया है।

अशोक : भिक्षुणी को। क्यों ? वह वहाँ क्या कर रही थी ?

प्रतिहारी : देव ! जिस समय सैनिकों ने उसे देखा तो वह रणभूमि में घायलों की परिचर्या करती हुई घूम रही थी। जब उन्होंने उसे घेर लिया तो वह घबराई नहीं, हँस कर बोली—मुझे बन्दी बनाओगे ? मैं तो स्वयं आ रही थी। मैं तुम्हारे सम्राट् से मिलना चाहती हूँ।

अशोक : सच। उसने ऐसा कहा। वह हँसी। डरी नहीं।

प्रतिहारी : नहीं देव ! डर तो उससे स्वयं डरता है। उसकी

आंखों में गहरा विश्वास भरा हुआ है। सैनिकों ने जब उससे चलने को कहा तो वह बोली—

कारुवाकी : क्या बोली ?

प्रतिहारी : वह बोली—मै तुम्हारे साथ चलूंगी पर तब, जब घायलों की परिचर्या पूरी हो जायगी। आप लोगों को बहुत जल्दी हो तो आप मेरी सहायता कर सकते हैं।

कारुवाकी : फिर···फिर क्या हुआ ?

प्रतिहारी : फिर सम्राट् के सैनिकों ने उसकी सहायता की।

कारुवाकी : क्या···क्या सैनिकों ने उसकी सहायता की ?

अशोक : मेरे सैनिकों ने घायलों की सेवा की। ओह ! कितनी अद्भुत बात है ? कितनी शक्ति है उस भिक्षुणी में ?

कारुवाकी : जो सैनिकों का हृदय जीत ले उसको शक्ति साधारण नही हो सकती, सम्राट् ?

अशोक : प्रतिहारी ! हम उससे मिलना चाहते हैं। तुम शीघ्र जाकर उसे ले आओ और देखो उसे पूरे आदर के साथ लाना।

प्रतिहारी : जो आज्ञा, देव !

(झुककर प्रणाम करता है और जाता है)

अशोक : क्या विचार है ! देवि वह भिक्षुणी कौन हो सकती है ? अद्भुत शक्ति है उसमें। वह शस्त्रों से तनिक भी नही डरती। उल्टा शस्त्रधारियों को उसने अपने वश में कर लिया है।

कारुवाकी : मैं भी उसकी शक्ति की बात सोच रही हूँ, स्वामी ! मुझे लगता है कि इसमें कोई रहस्य है ।

अशोक : रहस्य ? इसमें क्या रहस्य हो सकता है, देवि ?

कारुवाकी : उसने आपसे मिलने की इच्छा प्रगट की है न ।

अशोक : हाँ, हाँ, वही तो प्रतिहारी कहता था ।

कारुवाकी : सम्राट्, उस रहस्यमय भिक्षुणी का असमय मे इस प्रकार रणभूमि में घूमना साधारण बात नही है । वह अवश्य कलिग के राजकुल या राजतन्त्र से सम्बन्ध रखती है ।

अशोक : तो···

कारुवाकी : तो क्या सम्राट् ! वह प्रतिशोध चाहती है और स्वामी ! जब नारी प्रतिशोध लेने की बात सोच लेती है, तो फिर वह किसी बात की चिन्ता नहीं करती । मुझे इसमें षड्यत्र जान पड़ता है । सम्राट् सावधान रहें ।

अशोक : (**मुस्करा कर**) भिक्षु ठीक कहते थे कि राजकुल वालों की शब्दावली बहुत थोड़ी होती है । वैभव, विलास, शका, षड्यंत्र, प्रतिशोध, इनके अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं सूझता····

(**प्रतिहारी का प्रवेश**)

अशोक : क्यों ? क्या भिक्षुणी आ गई ?

प्रतिहारी : नही महाराज ! भिक्षुणी तो नहीं, एक भिक्षु है ।

अशोक : भिक्षु, इस समय ! कलिंग में क्या भिक्षुओं और

भिक्षुणियों के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा है ?

कारुवाकी : सुना है, सम्राट्। जो मर नहीं सके वे सब-के-सब पीले वस्त्र धारण करके भिक्षु बन गए हैं।

अशोक : जान तो कुछ ऐसा ही पड़ता है, देवि ! अच्छा प्रतिहारी ! ये भिक्षु कैसे है ?

प्रतिहारी : बड़े क्रोधी है।

अशोक : क्रोधी ! क्या तुमसे लड़ पड़े ?

प्रतिहारी : सम्राट् क्षमा करें; मैने जब उनसे रुकने को कहा, तो वे लड़े ही नही मुझे मारने भी दौड़े।

अशोक : मारने दौड़े ?

कारुवाकी : महाराज। सावधान रहें। ऊपर जो शान्ति दिखाई देती है उसके नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है।

अशोक : (प्रतिहारी से) अच्छा, उन्हें आने दो।

प्रतिहारी : जो आज्ञा।

(जाता है)

अशोक : देवि। ज्वालामुखी मेरे भी भीतर धधक रहा है। देखूं शायद भिक्षु कोई राह सुझा सके।

कारुवाकी : जो स्वयं राह से भटका हुआ है, वह दूसरे को क्या मार्ग दिखायगा ?

अशोक : वह न सही, उसकी असफलता अवश्य मार्ग दिखायगी।

(भिक्षु का प्रवेश)

अशोक : भन्ते ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भिक्षु : प्रणाम की कोई आवश्यकता नही है, सम्राट्! आवश्यकता है सतर्कता की । बुद्ध के चेले-चेलियां पीले वस्त्रों के नीचे शस्त्र छिपाए फिरते हैं ।

अशोक : (**एकदम**) क्या कहा ? कौन हो तुम ! (**ध्यान से देखकर**) ओह ! तुम हो बन्धुजीव । समझा ! तुम क्रोध करके भिक्षुओं को बदनाम करते-फिरते हो ।

कारुवाकी : अरे ! तुम तो पहचाने ही नहीं जाते ।

भिक्षु : देवि ! बन्धुजीव को कोई पहचान ले तो फिर बात ही क्या है । तोसली में सैकड़ों व्यक्ति भिक्षु बन्धुजीव से प्रव्रज्या ग्रहण करने को प्रस्तुत हैं ।

कारुवाकी : फिर यहाँ क्यों आए ? हमें भी प्रव्रज्या देना चाहते हो ? पर हम इतने भोले नही है । हम विजयी हैं । जाओ, जाकर उन्हें ही दीक्षा दो ।

भिक्षु : मै दे तो देता पर स्वयं कपटी होकर उनके कपट को पहचान गया हूँ । इसलिए सम्राट् से सलाह करने आया हूँ ।

अशोक : क्या मतलब ! कैसी सलाह करने आए हो ?

भिक्षु : यही कि जो प्रतिशोध के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते है, उन्हें प्रणाम किया जाता है या प्राणदण्ड दिया जाता है ।

अशोक : तुम्हारे पास प्रमाण है ?

भिक्षु : बन्धुजीव का मस्तिष्क भले ही आकाश को छूता हो

पर उसके पैर धरती पर लगे है। सम्राट्, सावधान रहे। अभी जो एक भिक्षुणी आने वाली है···

कारुवाकी : (**एकदम**) हाँ, हाँ, आने वाली है। कौन है वह ?

अशोक : वही भिक्षुणी जो युद्ध-भूमि में घायलों की सेवा कर रही थी।

भिक्षु : जी हाँ, वही। वह घायलो की सेवा नहीं कर रही थी, सम्राट् से मिलने का मार्ग सरल कर रही थी। मैने उसे उसके असली रूप में देखा है।

अशोक : कौन है वह ?

भिक्षु : ठीक-ठीक पहचान नहीं पाया, सम्राट्। पर है वह किसी बड़े कुल की। उसका रूप इस बात का साक्षी है। कल जब मैंने उसे देखा तो वह साधारण नारी के रूप मे थी और तोसली के अधमरे और अर्द्ध विक्षिप्त व्यक्तियो को युद्ध के लिए भड़का रही थी।

अशोक : सच ! पर वह भिक्षुणी क्यों बनी ?

भिक्षु : इसलिए कि वह आप तक आ सके और···

कारुवाकी : और···

भिक्षु : बन्धुजीव की जिह्वा उन शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकती, देवि।

अशोक : हमारी जिह्वा कर सकती है। भिक्षुणी हमारी हत्या करना चाहती है।

भिक्षु : सम्राट् ने ठीक समझा।

अशोक : **(क्रोध)** सम्राट् सदा ठीक समझते है और यह भी जानते है कि हत्यारे से अपनी रक्षा कैसे की जाती है।

भिक्षु : जानता हूँ, सम्राट्। आवश्यकता पडने पर सैनिक मिल सके इसका प्रबन्ध कर आया हूँ। अच्छा ! प्रणाम। अब जाकर प्रव्रज्या देनी शुरू करता हूँ। दुख यही है कि चण्डगिरि के लिए काम बहुत हो गया है।

(उठता है)

अशोक : **(एकदम)** बन्धुजीव !

भिक्षु : सम्राट् !

अशोक : **(सहसा मौन हो जाते हैं)**

भिक्षु : क्या आज्ञा है, सम्राट् !

अशोक : **(चौंक कर)** कुछ नही, जाओ।

भिक्षु : जो आज्ञा। **(मुड़ता है)**

अशोक : **(पुकार कर)** बन्धुजीव। प्रव्रज्या का काम आज रात रुक सकता है।

भिक्षु : सम्राट् ! प्रव्रज्या रात मे नही दी जाती।

अशोक : तो जाओ।

(बन्धुजीव का प्रस्थान। प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : सम्राट् की जय हो। भिक्षुणी उपस्थित है।

अशोक : उसे आने दो। और सुनो, तुम सब बाहर ठहरो।

प्रतिहारी : जो आज्ञा !

(झुककर प्रणाम करता है और जाता है)

कारुवाकी : सम्राट् ! अब तो विश्वास करेंगे कि भिक्षुणी किसी षड्यंत्र की सूत्रधार है। वह प्रतिशोध लेने निकली है।

अशोक : हम तुम यही है, प्रिये। देखते हैं कि वह कैसा और किस प्रकार प्रतिशोध लेती है।

(भिक्षुणी का प्रवेश। पीत वस्त्र, किंचित श्याम वर्ण, आकर्षक नयन, कलामय भ्रू बंक, और विश्वास भरने वाली मुद्रा। लगता है किसी सुन्दरी ने नाटकीय रगमंच के लिए भिक्षुणी का रूप धारण किया है। सम्राट् उसे देखते हैं। कुछ खोजना चाहते हैं पर सहसा सम्राट् की पद-मर्यादा का ध्यान करके दृष्टि घुमा लेते हैं। रानी कारुवाकी आश्चर्य से उसके अंग-अंग को देखती है और देखती रह जाती है। कई क्षण बीत जाते हैं तब सहसा सम्राट् सम्भल कर बोलते हैं।)

अक्षोक : तुम कौन हो ?

भिक्षुणी : जो सम्राट् देख रहे है, एक भिक्षुणी।

अशोक : **(कठोर होने की चेष्टा)** इस समय रणभूमि मे क्या कर रहीं थीं ?

भिक्षुणी : वह भी सम्राट् सुन चुके हैं।

अशोक : **(अधिकार)** सम्राट् तुम्हारे मुख से सुनना चाहते हैं। जो दिखाई देता है वही सदा सत्य नहीं होता।

भिक्षुणी : **(मुस्कराकर)** सम्राट् सत्य और झूठ का निर्णय करना भी जानते हैं ?

कारुवाकी : भिक्षुणी ! सम्राट् से विवाद न करके प्रश्न का उत्तर दो ।

भिक्षुणी : **(उसी तरह मुस्करा कर)** ओह ! महारानी को सम्राट् की अवहेलना देखकर दुख हुआ । परन्तु महारानी ! प्रश्न का उत्तर न देने की मेरी कोई इच्छा नहीं है । मै केवल यह जानना चाहती हूँ कि आप लोग मुझ मे और मेरे कामों में दिलचस्पी क्यों लेते है ?

कारुवाकी : क्योकि तुम शत्रु-पक्ष की हो । तुम्हारा कुछ उद्देश्य हो सकता है ।

भिक्षुणी : **(हँस कर)** उद्देश्य ! मेरा कुछ उद्देश्य हो सकता है । शत्रु का कुछ उद्देश्य हो सकता है । महारानी ! तुमने कुछ गलत नहीं समझा । मेरा उद्देश्य है ।

अशोक : **(एकदम)** क्या उद्देश्य है तुम्हारा ? सच बताओ क्या तुम प्रतिशोध लेने आई हो ?

भिक्षुणी : **(सहसा काँप कर)** किसका प्रतिशोध, सम्राट् ?

अशोक : अपने देश का प्रतिशोध । कलिंग को पराजित करने का प्रतिशोध **(आवेश)** लेकिन तुम भूलती हो । तुम प्रतिशोध नही ले सकतीं । तुम मेरी हत्या नहीं कर सकतीं····मै····मै····

(कटार खींच लेता है)

भिक्षुणी : सम्राट् ! हत्या करते-करते आप सिवाय हत्याओं के और कुछ नहीं सोच सकते । आप उस बिल्ली की

तरह हैं जो स्वप्न में भी छिछड़े ही देखती है।

कारुवाकी : भिक्षुणी ! तुम भारत-सम्राट् से बातें कर रही हो।

भिक्षुणी : देवि ! सत्य कहने के लिए कुछ नहीं सोचा जाता। **(मुड़कर)** सम्राट् ! मैंने कहा था कि मेरे आने का उद्देश्य है। वह उद्देश्य है आप तक कलिग के निवासियों का सन्देश पहुँचाना।

अशोक : कलिंग के निवासियों का सन्देश ? क्या अभी कलिग में सन्देशा भेजनेवाले बचे है ?

भिक्षुणी : बचे क्यों नही है। सम्राट् ! अभी वे नारियां शेष है जिनके सुहाग की लाली रक्त की लाली बन कर धरती पर बह रही है, जिनकी कोख के रत्न गिद्ध और गीदड़ों के भोजन बने हुए है। अभी वे वृद्ध बचे है जिनके नेत्र है, पर दृष्टि नहीं है; जिनके शरीर है, पर प्राण नही है; जिनके कान है, पर वे सुन नहीं पाते; जो तिल-तिल कर प्राण-दान कर रहे है ····

अशोक : भिक्षुणी····भिक्षुणी····बन्द करो यह शब्दजाल····

भिक्षुणी : **(अनसुना करके उसी तरह)** सम्राट्। अभी वे बालक भी बचे हुए है जो महानाश की दानवी-लीला का रक्त पीकर बढ़ रहे है। अभी वे खण्डहर नष्ट नहीं हुए है जिनमें बसने वाले उल्लू और चमगादड़ दिन-रात आप का गुणगान करते रहते हैं। सम्राट् ! इन सब ने मुझ

से कहा है कि मगध के उस अत्याचारी राजा से कह देना "मरण तो संसार का नियम है, उसके लिए उसने इतने प्रयत्न क्यों किये। यदि वह जीवन के लिए इससे दशमांश शक्ति भी खर्च करता तो संसार विधाता को भूल जाता।"

अशोक : (चकित) भिक्षुणी····भिक्षुणी····

भिक्षुणी : मै यही कहना चाहती थी। मै यही कहने आई थी।

अशोक : (खोया-खोया) भिक्षुणी। तुम यह कहने आई हो। तुम प्रतिशोध लेने नहीं आई। नहीं, तुम झूठ बोल रही हो। तुम अवश्य प्रतिशोध लेने आई हो।

भिक्षुणी : मै प्रतिशोध लेने आई हूँ। किसका प्रतिशोध, कैसा प्रतिशोध ! सम्राट्, तुम यदि यह समझते हो कि तुमने कलिंगवासियों का नाश किया है, तो तुम भूल करते हो। तुमने उनका नही, अपना नाश किया है। पराजय उनकी नही, तुम्हारी हुई है। कलिंग हार कर भी जीत गया है, तुम जीत कर भी हार गए हो।

अशोक : मैं जीत कर भी हार गया हूँ····

भिक्षुणी : हाँ, सम्राट् ! तुम जीत कर भी हार गए। तुमने जीवन का नाश किया है और जीवन का नाश करने वाले सदा पराजित होते हैं।

कारुवाकी : भिक्षुणी ! तुम्हारे वस्त्र पीले है पर तुम्हारी वाणी मे आग है।

भिक्षुणी : महारानी ! पीले वस्त्रों का अर्थ निष्क्रियता नहीं

है और क्रिया में सदा अग्नि होती है। अग्नि जीवन की शर्त है। वह प्रकाश भी देती है और जलाती भी है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग अपने-आपको जला लेते हैं, कुछ अपनी दुर्बलता को।

कारुवाकी : भिक्षुणी ! अग्नि जीवन की शर्त हो सकती है पर शब्दजाल सत्य की शर्त नहीं है। वाक्-चातुरी से उद्देश्य पूरे नही हुआ करते।

भिक्षुणी : जानती हूँ महारानी ! उद्देश्य वाक्-चातुरी से नहीं, कर्म-चातुरी से पूरे होते है पर बन्दिनी को कर्म करने की स्वतन्त्रता कहाँ है ?

अशोक : तुम बन्दिनी हो ?

भिक्षुणी : मेरा यहाँ होने का यही अर्थ है।

कारुवाकी : (**कठोर**) तब तुम यह भी जानती होगी कि बन्दिनी के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है।

भिक्षुणी : जानती क्यों नहीं। मगध में उसका सिर उड़ा दिया जाता है। (**मुड़कर**) कटार उठाइए, सम्राट् ! उठाइए ! मैं तैयार हूँ।

(शीघ्रता से आगे बढ़कर सम्राट् के सामने बैठ जाती है)

कारुवाकी : (**काँप कर**) भिक्षुणी !

अशोक : (**काँपकर**) भिक्षुणी···भिक्षुणी ! यह तुमने क्या कहा ?

भिक्षुणी : जो सत्य है।

अशोक : जो सत्य है। नारी का सिर उड़ाना सत्य है। नारी की हत्या करना सत्य है। मैं नारी की हत्या कर सकता हूँ। मैं नारी पर हाथ उठा सकता हूँ।

भिक्षुणी : नहीं जानती थी कि मगध के सम्राट् क्रूर होने के साथ ढोंगी भी हैं। अभी तो वे कटार खीच रहे थे और अभी नारी-हत्या के विचार मात्र से ही उनके कोमल हृदय पर चोट लगी; पर मै पूछती हूँ (**आवेश**) कलिग युद्ध में हता-हत लक्ष-लक्ष अभागे सैनिको के क्या मां, बहन, बहू, बेटी नहीं थी ? क्या वे मां, बहन, बहू, बेटी, नारी नहीं हैं ?

कारुवाकी : फिर वही आवेश, फिर वही शब्दजाल।

भिक्षुणी : महारानी ! सत्य को बार-बार शब्दजाल कह कर झुठलाया नही जा सकता। मै कलिग की आहत आत्मा की प्रतिनिधि हूँ। मुझसे आप वीणा के मधुर संगीत की आशा नहीं कर सकती। आप तो नारी हैं। आप मेरे साथ चलिए। मैं आपको दिखाऊँगी कि कलिंग के हर नगर और गांव में ऐसी असंख्य नारियां हैं जो जीते-जी मौन हो गई है। जिनकी आत्मा झुलस गई है **(मुड़कर)** सम्राट्, क्या ही अच्छा हो कि आप उनके सिर काट कर उन्हें इस यातना से मुक्ति दे। जहाँ आपने इतना रक्त बहाया है वहाँ थोड़ा और बहाइए। इस रक्त-यज्ञ को पूर्ण कीजिए। अब तक आपने जो कुछ किया था वह हत्या थी पर अब जो कुछ करेगे वह उन पर उपकार होगा।

अशोक : **(काँप कर)** भिक्षुणी···भिक्षुणी ··बस करो· बस करो। ऐसा लगता है जैसे···

(सहसा सिर पकड़ कर बैठ जाते हैं। रानी दौड़ती है)

कारुवाकी : महाराज ! महाराज क्या बात है। क्या आप अस्वस्थ है ?

अशोक : **(सम्भल कर)** कुछ नही, देवि। कुछ नहीं, मै स्वस्थ हूँ। मुझे ऐसा लगा था जैसे मैने वह वाणी पहले भी सुनी है। कलिग के युवराज ने कुछ ऐसे ही कहा था।

भिक्षुणी : कलिग का युवराज और क्या कलिग की साधारण नारी ! आज सबकी भाषा एक है। भावना एक है। गतिमति सब एक है। सबका एक स्वर है—आपने मनुष्यों को नही शवों को, नगरों को नही खण्डहरों को जीता है। आप श्मशान के सम्राट् है···

अशोक : यही उसने कहा था। बिल्कुल यही। मै मनुष्यों का नही शवों का, नगरों का नही खण्डहरों का सम्राट् हूँ। **(एकदम)** भिक्षुणी ! तुम ठीक कहती हो। मैने नरहत्या की है। मैने नगरों को खण्डहर बनाया पर जो नगरों को खण्डहर बना सकता है क्या वह खण्डहरों को नगर नहीं बना सकता ?

भिक्षुणी : नही बना सकता।

अशोक : नही बना सकता; क्यों ?

भिक्षुणी : क्योंकि वह पराजितों में प्रतिशोध की आग भड़का

देता है और जो प्रतिशोध की भावना जगाता है वह जीत कर भी हार जाता है। सम्राट् ! शस्त्रों की जीत जीत नहीं होती। जहाँ लोगों का इस प्रकार वध—मरण और देश-निकाला हो ऐसा जीतना न जीतने के बराबर है।

अशोक : (**दोहराता हुआ**) जहाँ लोगों का इस प्रकार वध—मरण और देश-निकाला हो ऐसा जीतना न जीतने के बराबर है। जहां लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देश-निकाला हो (**एकदम**) भिक्षुणी ! तुम कलिंग की साधारण नारी नहीं हो। तुम अवश्य किसी तत्वदर्शी की पुत्री हो। तुम मुझे बताओ कि क्या जीत का कोई और मार्ग भी होता है ?

कारुवाकी : सम्राट् ! आप अब बहुत थक गए है, विश्राम करिये। भिक्षुणी से सवेरे बात कर सकते है। मै विश्वास दिलाती हूँ कि मै आदर पूर्वक इन्हें अपने साथ रखूंगी।

अशोक : देवी डर गई जान पड़ती हैं। अशोक इस प्रकार व्यथित होने वाला नही है और फिर भिक्षुणी के शब्द मेरे घायल मन पर अमृत वर्षाते हैं। (**मुड़कर**) हाँ देवि ! क्या तुम जीत का कोई और मार्ग जानती हो ?

भिक्षुणी : सम्राट् मुझ से पूछते है ?

अशोक : हां। कोई डर है ?

भिक्षुणी : है।

अशोक : क्या ?

भिक्षुणी : मैं सम्राट् के शत्रु-पक्ष की हूँ।

अशोक : नही देवि। अब मेरा कोई शत्रु नही है। मैने युवराज को क्षमा कर दिया है।

भिक्षुणी : युवराज को ?

अशोक : हाँ, कलिग के युवराज को मैने क्षमा कर दिया। उसका राज्य उसको लौटा दिया। मुझे खेद है कि उसके पिता और दूसरे सम्बन्धी युद्ध में मारे गए। सुना है कि उसकी एक बहन बची है पर अभी तक उसका कुछ पता नही लगा। और··· और यह अचरज की बात है कि उसका और तुम्हारा स्वर बहुत कुछ मिलता है। विचार भी वे ही है। रूप भी कुछ-कुछ···

भिक्षुणी : **(एकदम)** यह संयोग की बात है, सम्राट्। नहीं तो कहाँ कलिग के युवराज और कहाँ उसके एक साधारण नागरिक की पुत्री।

अशोक : यह तो और भी गौरव की बात है, भिक्षुणी। कलिग की सब सन्तान इतनी भयहीन है। भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। जो भय को जीत लेता है, वह महान है। तुम भी महान हो। युवराज भी महान है। मैं भी महानता चाहता हूँ। मै तुम सबका मित्र बनना चाहता हूँ, इसीलिए मैने राजकुमार को क्षमा कर दिया।

भिक्षुणी : ठीक है सम्राट्, परन्तु···

अशोक : परन्तु ! परन्तु क्या ?

भिक्षुणी : परन्तु सम्राट् ! युवराज आपकी क्षमा ग्रहण नहीं करेंगे।

अशोक : युवराज मेरी क्षमा ग्रहण नही करेंगे ?

भिक्षुणी : नही।

अशोक : नही ! भिक्षुणी। तुम अवश्य रहस्यमयी हो। तुम कौन हो ? तुम कैसे जानती हो कि युवराज मेरी क्षमा ग्रहण नही करेंगे और क्यों नही करेंगे।

भिक्षुणी : क्योंकि वे वीर है और वीर पुरुष किसी की क्षमा ग्रहण नही किया करते ।

अशोक : (**काँप कर**) वीर पुरुष किसी की क्षमा ग्रहण नहीं किया करते। वीर पुरुष किसी की क्षमा ग्रहण नहीं किया करते। यही···यही उसने भी कहा था।

भिक्षुणी : उसने ठीक कहा था और वह अपने वचन पर दृढ़ रहेगा। वह आपके द्वारा दी गई प्राणों की भिक्षा नहीं लेगा

अशोक : मेरे द्वारा दी गई प्राणों की भिक्षा नहीं लेगा।

भिक्षुणी : हाँ, नही लेगा। कभी नहीं लेगा।

अशोक : (**एकदम**) कैसे नही लेगा। मैने प्राणदण्ड की आज्ञा वापस ले ली है। वह मेरा बन्दी है। मेरी आज्ञा के बिना कोई उसका बाल नही छू सकता। मै सम्राट् हूँ।

भिक्षुणी : (**हँस कर**) सम्राट् को अपनी आज्ञा पर बहुत घमण्ड है पर कलिग का युवराज उसकी सीमा से बहुत दूर है।

अशोक : (**क्रोध**) इतना विश्वास। देखूंगा उसे कौन मारता है?

भिक्षुणी : उसे उसका कर्तव्य मारेगा, सम्राट्। कलिग कार क्त-यज्ञ अभी पूर्ण नहीं हुआ है। अभी महतिनिशा आनी शेष है। अभी कुछ और हृदय टूटने शेष है। अभी आपको अपनी और पराजय देखनी शेष है। अभी युवराज का बलिदान शेष है।.

(आवेश और दृढ़ता की इस भविष्य-वाणी से सम्राट् और महारानी कांप उठते हैं। महारानी सहसा आगे बढ़ आती है।)

कारुवाकी : भिक्षुणी ! सच बताओ तुम कौन हो। तुम अब और अधिक धोखा नहीं दे सकती। तुम साधारण नाग-रिक की कन्या नही हो। तुम आज भिक्षुणी हो सकती हो पर कल····

भिक्षुणी : **(एकदम)** निस्सन्देह, कल मै भिक्षुणी नहीं थी।

अशोक : कल तुम भिक्षुणी नही थी ? **(फुसफुसा कर)** कल तुम भिक्षुणी नहीं थीं। तो मेरा अनुमान ठीक है। तुम··· तुम कलिग की राजकुमारी हो।

भिक्षुणी : हाँ सम्राट् ! आपका अनुमान ठीक है। मै कलिग की राजकुमारी हूँ।

अशोक : कलिग की राजकुमारी ! युवराज की बहन।

कारुवाकी : कलिग की राजकुमारी ! तुम कलिग की राज-कुमारी और इस वेश में···**(दौड़ कर गले लगा लेती है)** राजकुमारी···

अशोक : राजकुमारी ! राजकुमारी ! **(दोनों हाथों से मुंह ढक कर)** राजकुमारी मैं तुम्हारे पिता का हत्यारा हूँ। मैंने तुम्हारे देश को उजाड़ा है।

भिक्षुणी : **(गम्भीर स्वर)** हाँ सम्राट् ! आप मेरे पिता के हत्यारे हैं। आपने मेरे देश को उजाड़ा है। मैं भी आपकी हत्या करने का निश्चय करके घर से चली थी। मैंने भी आपका नाश करने के लिए ये वस्त्र धारण किये थे पर··· पर

कारुवाकी : क्या तुम हत्या करने चली थीं ? हत्या करने···

अशोक : तुम मेरी हत्या करने आई थीं पर···पर क्या ! क्या हुआ ? तुमने मेरी हत्या का विचार छोड़ दिया ?

भिक्षुणी : छोड़ना पड़ा।

अशोक : छोड़ना पड़ा ! क्यों····?

भिक्षुणी : सम्राट् ! जब मैंने भिक्षुराज से प्रव्रज्या ग्रहण की और जब तथागत के पवित्र मंत्र का उच्चारण किया तो···

कारुवाकी : **(चकित)** तो···

अशोक : **(मंत्र मुग्ध)** तो···तो क्या हुआ, राजकुमारी !

भिक्षुणी : तो जैसे मेरे मन का सारा कलुष धुल गया। मुझे शस्त्र से प्रतिशोध लेना बुरा लगने लगा। मैंने भिक्षुराज से सब बातें बता कर पूछा कि क्या प्रतिशोध लेने का कोई और मार्ग भी होता है।

अशोक : तब उन्होंने क्या कहा?

भिक्षुणी : तब उन्होंने कहा—बुद्ध-मार्ग में प्रतिशोध की भावना का त्याग ही प्रतिशोध है।

अशोक : ओह ! यही उन्होंने मुझसे कहा था। यही···

(राधागुप्त का प्रवेश)

राधागुप्त : सम्राट् की जय हो। राजकुमारी संघमित्रा बहुत देर से बन्दी के पास हैं। राजकुमार महेन्द्र और भिक्षु उपगुप्त भी पहुँच गए होंगे। आप चलें···

अशोक : हाँ, हाँ, मैं अभी चलता हूँ। महामात्य ! देखो, यह कलिंग की राजकुमारी हैं। मेरा वध करने के लिए भिक्षुणी बनी थीं और मैं समझता हूँ इन्हें काफी सफलता मिली है।

राधागुप्त : **(चकित)** क्या···क्या कहते हैं, सम्राट्। **(कटार खींचता है)** कौन है, जो सम्राट् का वध करना चाहता है ?

अशोक : **(मुस्कराकर)** कोई नहीं, कोई नहीं, महामात्य। विष्णुगुप्त चाणक्य के शिष्य को इस प्रकार डरना शोभा नहीं देता। राजकुमारी मनुष्य का वध करने की एक नई रीति जानती हैं। वह मर जाता है पर उसके प्राण नहीं निकलते। शायद तुम्हें विश्वास नहीं आ रहा है पर आजायगा। अब तो हम चल रहे है। आओ राजकुमारी ! आओ देवी कारुवाकी ! तुम भी आओ। प्रभात होनेवाला है। बन्दीगृह में एक नव-प्रभात होने दो।

(सम्राट् शीघ्रता से रंगमंच से बाहर जाते हैं। महारानी के

साथ राजकुमारी भी उसी दृढ़ता से जाती है। राधागुप्त सबसे पीछे कुछ खोया-खोया-सा जाता है।)

राधागुप्त : समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है। सब कुछ विचित्र, अविश्वसनीय, अद्‌भुत···

(जाता है और परदा गिर जाता है)

तीसरा अंक

(रंगमंच पर रात्रि का गहन अन्धकार। रह-रहकर पहरुए की पुकार उठती है। मंच पर एक ओर दीपक का मन्द प्रकाश हो रहा है। मानो वह वहाँ सिमिट गया है। कुछ क्षण बाद उस प्रकाश में एक छाया उभरती दिखाई देती है। वह एक युवक की छाया है जो एक शिला पर मौन बैठा हुआ किसी गहरी विचारधारा में निमग्न है। उसके शरीर की छाया तम्बू की एक भित्ति पर ऐसे पड़ रही है जैसे किसी कुशल चित्रकार ने विश्वास को चित्रित किया हो। वह कलिंग का राजकुमार है और अशोक की आज्ञा से बंदीगृह में मृत्यु की राह देख रहा है। इसी समय एक ओर से राजकुमारी संघमित्रा और उसके पीछे बंदीगृह का घातक चण्डगिरि वहाँ आते हैं। राजकुमारी ने सिर से पैर तक एक काला वस्त्र पहना है। उसकी चाल स्थिर है पर उसके नयन चमकते हैं। चण्डगिरि का विशाल शरीर, उसकी बड़ी बड़ी मूछें और हाथ की बड़ी कटार मन में भय पैदा करती है। आकर दोनों रंगमंच के प्रवेशद्वार पर रुक जाते हैं। राजकुमारी मुड़ती है।)

संघमित्रा : तुम वहीं, बाहर ठहरो, चण्डगिरि ! मैं एकान्त चाहती हूँ।

चण्डगिरि : परन्तु देवि ! सम्राट् की आज्ञा है कि···

संघमित्रा : सम्राट् की आज्ञा मैं जानती हूँ, चण्डगिरि ! और यह भी जानती हूँ कि तुम पर विश्वास किया जा सकता है । कुमार क्षमा मांग लें तो सम्राट् उन्हें मुक्त करने को तैयार हैं। मैं चाहती हूँ कि उन्हें···

चण्डगिरि : देवि, यह सब ठीक है लेकिन मेरा कर्तव्य मुझसे कहता है कि····

संघमित्रा : **(विनय)** चण्डगिरि ! मुझे राजकुमार से बहुत आवश्यक बातें करनी हैं । मैं चाहती हूँ कि भिक्षु उपगुप्त के आने के पूर्व उन्हें समाप्त कर लूँ।

चण्डगिरि : **(चकित)** क्या ! भिक्षु उपगुप्त यहाँ आयेंगे ।

संघमित्रा : हाँ चण्डगिरि ! वह सम्राट् से आज्ञा लेने गए हैं।

चण्डगिरि : सम्राट् उन्हें आज्ञा देंगे । एक भिक्षु को यहाँ आने की आज्ञा देंगे । असम्भव, एकदम असम्भव !

संघमित्रा : असम्भव नहीं, चण्डगिरि। उन्हें आज्ञा मिलेगी । सम्राट् जो न कर सके उसे वह करना चाहते हैं । जाओ, उनकी राह देखो ।

(चण्डगिरि सहसा कुछ उत्तर न देकर शून्य में निहारता है)

संघमित्रा : **(विनम्र स्वर)** जाओ चण्डगिरि !

चण्डगिरि : **(एकदम)** जाऊँ···अच्छा जाता हूँ, राजकुमारी ! लेकिन दंड तो स्थिर है ।

संघमित्रा : जबतक सम्राट् दूसरी आज्ञा न भेजें तबतक वह

स्थिर है।

चण्डगिरि : अच्छा देवि ! मैं बाहर ठहरता हूँ लेकिन ध्यान रखिए कि उषा की प्रथम किरण के उदय होने से पूर्व आपको चले जाना होगा।

संघमित्रा : जानती हूँ।

(जाता है। संघमित्रा एक क्षण उसे जाते देखती है फिर राजकुमार की ओर मुड़ती है, पर आगे नहीं बढ़ती, वहीं खड़ी-खड़ी दीर्घ निश्वास लेती है।)

संघमित्रा : **(स्वगत—एक दीर्घ निश्वास लेकर)** यह सब क्या है ? यह इतना आकर्षण क्यों है ? हृदय में यह धड़कन कैसी है ? यह स्पन्दन किसका है ? **(उच्छवसित स्वर)** क्या प्रेम का ? **(किंचित ऊँचा स्वर)**····क्या मैं सचमुच राजकुमार से प्रेम करती हूँ ? क्या मैं सचमुच उसे बचाना चाहती हूँ। क्या उसे बचाना ठीक है····वह शत्रु है। वह मेरे भाई, मेरे देश, मेरे सम्राट् का शत्रु है—शत्रु, हाँ, वह शत्रु है। मैं शत्रु से प्रेम करती हूँ। मेरे देश का शत्रु मेरे हृदय सिंहासन पर आ बैठा है। ओह····पर···· पर शत्रु हुआ, तो क्या ? वह वीर है, वह निर्भीक है, वह सुन्दर है। अभी उसी दिन जब इसका हाथी मगध की सेना में घुस गया था, तो वह काई की तरह फटती चली गई थी। बार-बार असंख्य सैनिकों ने उसे घेरने की कोशिश की पर उसके छत्रधारी आरोही ने शरवृष्टि

से सबको कुण्ठित कर दिया। तब वे ऐसे लगते थे जैसे देव सेनापति कुमार कार्त्तिकेय युद्ध कर रहे हों। स्वयं सम्राट् ने एक दिन उनके शौर्य की प्रशंसा की थी और आज भी वह ऊपर से जितने कठोर हैं भीतर से उतने ही त्रस्त हैं। उन्होंने मुझसे पूछा था—क्या शस्त्र के अतिरिक्त किसी का वध करने की कोई ओर भी रीति होती है? यह बताता है कि वह आलोडित हो रहे हैं और उनका अन्तर्मन कुमार को क्षमा करने का मार्ग ढूँढ़ रहा है। मैं वही मार्ग उन्हें सुझाऊँगी और कुमार की रक्षा करूँगी। लेकिन···लेकिन कुमार··· नहीं, नहीं, अब मैं कुछ नहीं सोचूँगी। समय बहुत कम है और मुझे कुमार को क्षमा स्वीकार करने के लिए मना लेना है।

(वह शीघ्रता से आगे बढ़ कर मंच के उस ओर आती है जहाँ दीवे के मंद प्रकाश में कुमार विचार मग्न बैठा है। आहट पाकर वह चौंकता है)

कुमार : कौन? चण्डगिरि! क्या समय हो गया?

संघमित्रा : **(मौन रहती है)**

कुमार : बोलते नहीं? कौन है? **(उठता है और राजकुमारी को कोई नारी समझ कर स्तम्भित रह जाता है)** कोई नारी! इस समय? यहाँ? कौन हैं आप?

संघमित्रा : **(मौन रहती है)**

कुमार : आप बोलती नहीं। **(पास आता है। ध्यान से**

राजकुमारी को देखता है और काँप कर पीछे हट जाता है।)

आप···राजकुमारी संघमित्रा ! आप···आई हैं। समझा !

संघमित्रा : (पूर्वतः मौन)

कुमार : आई हैं तो आप बोलती क्यों नहीं ?

संघमित्रा : (मौन)

कुमार : शायद बन्दी से कोई धृष्टता हो गई है। ओह समझा। मैं देवि को प्रणाम करना भूल गया। बन्दी कलिंग-कुमार देवी संघमित्रा को प्रणाम करता है। **(हाथ जोड़कर प्रणाम करता है)** पधारिए, आपने बंदीगृह में आने का कैसे साहस किया।···भाई जो युद्ध-भूमि में नहीं कर सका, वह क्या बहन बन्दीगृह में करने आई है ?

संघमित्रा : (धीरे से आगे बढ़ कर) मुझे प्रसन्नता है कि कुमार मुझे भूले नहीं हैं।

कुमार : (हँस कर) देवि ! कलिंग-कुमार की स्मृति इतनी क्षीण नहीं है कि वह अपने शत्रु को भी भूल जाय।

संघमित्रा : (काँप कर) शत्रु ! मैं आपकी शत्रु हूँ !

मार : कलिंग की भूमि को कलिंग-पुत्रों के रक्त से प्लावित करनेवाले अत्याचारी अशोक की बहन शत्रु नहीं तो क्या मित्र हो सकती है ?

संघमित्रा : (दृढ़ स्वर) हो सकती है।

कुमार : (चकित) हो सकती है ?

संघमित्रा : हाँ।

कुमार : देवि ! शायद पुरानी बातें याद कर रही हैं।

संघमित्रा : बातें कभी पुरानी नहीं होतीं, कुमार ! स्मृति उन्हें सदा नया रखती है।

कुमार : परन्तु बातें पुरानी न होने पर भी उनका प्रभाव बदल जाता है, देवि !

संघमित्रा : नहीं कुमार, प्रभाव भी नहीं बदलता। वह केवल अपने से अधिक शक्तिशाली प्रभाव के पीछे छिप जाता है।

कुमार : **(हँस कर)** शब्दों का यह मायाजाल नारी को ही शोभा देता है, राजकुमारी !

संघमित्रा : **(पास आकर)** शब्दों का मायाजाल। कुमार ! शब्दों का यह मायाजाल भावना की भित्ती पर उठता है। कुछ देर पहले तुमने भैया से कहा था—बस यही तुम्हारी वीरता है, यही तुम्हारा शौर्य है, इसी बल पर सम्राट् बने हो, एक बन्दी का सिर नहीं झुका सके। खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते हैं। लेकिन वह वीर पुरुष का मार्ग नहीं है। इस सुन्दर शब्द-जाल के पीछे भी भावना की शक्ति थी।

कुमार : नहीं, राजकुमारी संघमित्रा ! उन शब्दों के पीछे भावना नहीं, नग्न सत्य था।

संघमित्रा : कुमार ! अण्डा स्वयं जीव नहीं होता पर उसके

अंतर में जीव समाया रहता है। नग्न सत्य और भावना की यही स्थिति है। भावना मनुष्य की वह शक्ति है जो उसे कभी क्लान्त नहीं होने देती।

कुमार : (**हँसता है**) देखता हूँ देवी संघमित्रा ने भी अपने भाई की भांति न हारने का प्रण किया हुआ है।

संघमित्रा : मैं प्रण में विश्वास नहीं करती। मैं उत्तर चाहती हूँ।

कुमार : (**गम्भीर शान्त स्वर**) उत्तर देना कोई कठिन काम नहीं है, देवि ! कठिन काम है आश्वस्त करना और फिर तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि बन्दी के पास उत्तर देने का भी समय नहीं है। उसके जीवन की घड़ियां गिनी हुई हैं।

संघमित्रा : (**शान्त**) मैं उन्हीं घड़ियों की सीमा तोड़ने आई हूँ, कुमार !

कुमार : (**चकित**) उन घड़ियों की सीमा तोड़ने आई हो ? मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा, देवि !

संघमित्रा : आशय स्पष्ट है। मैं तुमसे तुम्हारे प्राणों का दान मांगने आई हूँ, कुमार !

(दृढ़ रहना चाह कर भी काँप उठती है)

कुमार : (**चकित**) मुझसे। (**अट्टहास करता है**) मुझसे, खूब ! देवी तर्क की भांति नाट्य कला में भी प्रवीण जान पड़ती हैं। तभी अपने भाई के पास न जाकर मेरे पास आई हैं।

संघमित्रा : **(उसी तरह शांत)** भैया के पास जाकर क्या करती। वह प्राण ले सकते हैं, दे नहीं सकते। दे तुम ही सकते हो।

(कुमार काँपता है पर दूसरे ही क्षण तीव्र हो उठता है)

कुमार : **(तीव्र स्वर)** तो तुम कहना चाहती हो कि मैं तुम्हारे भैया के पास जाकर क्षमा मागूँ। उसकी अधीनता स्वीकार करूँ।

संघमित्रा : **(एकदम व्याकुल स्वर में)** नहीं, नहीं, मैं यह नहीं कहती। मैं यह कह ही नहीं सकती।

कुमार : तो क्या कहती हो ?

संघमित्रा : मैं कहती हूँ कि सम्राट् यदि तुम्हारी मुक्ति का आदेश भेजें तो तुम उसे अस्वीकार मत करना।

कुमार : **(ठगा-सा)** क्या···क्या मगध का क्रूर सम्राट् मेरी मुक्ति का आदेश देगा ?

संघमित्रा : दे सकता है।

कुमार : पर क्यों ? कैसे ?

संघमित्रा : क्यों और कैसे की जानने की इतनी चिन्ता मत करो कुमार ! मनुष्य कब क्या कर बैठेगा, कौन जानता है। मगध-सम्राट् की मानसिक स्थिति इस समय ऐसी है कि मेरे कहने पर वह तुम्हें क्षमा कर सकते हैं।

कुमार : तुम्हारे कहने पर वह मुझे क्षमा कर सकते हैं। तुम्हारे कहने पर। तुम मेरी मुक्ति की प्रार्थना करोगी ?

संघमित्रा : आज्ञा दो तो।

कुमार : पर क्यों ?

संघमित्रा : क्यों।

कुमार : हाँ, तुम मेरी मुक्ति की प्रार्थना क्यों करना चाहती हो ? तुम मुझे क्यों बचाना चाहती हो ? क्यों···क्यों···

संघमित्रा : **(खोई खोई)** क्यों करना चाहती हूँ ? क्यों बचाना चाहती हूँ ? **(धीरे से)** तुम नहीं जानते ?

कुमार : शायद···शायद नहीं जानता। तभी तो पूछता हूँ।

संघमित्रा : **(उच्छ्वसित स्वगत)** नहीं जानते तभी पूछते हो। ओह···निष्ठुर कुमार ! आखेट के बाद की वह रात भूल गए। भूल गए वे प्यार की बातें। जब तुमने कहा था··· तुमने कहा था···ओह, कैसे बताऊँ···कैसे बताऊँ···तुम्हें कैसे बताऊँ कि···कि तुमने कहा था—तुम्हारे नयन शरत् की ज्योत्स्ना को लजाते हैं। तुम्हारा हास्य हिम-शिखर के प्रभात से अधिक मनोरम है। तुम्हारी वाणी में मलय का संगीत हैं। तुम्हारे गीतों में यौवन का नृत्य है।

(बोलते-बोलते भावातिरेक हो जाता है। कुमारी प्रकोष्ठ की भित्ती का सहारा लेकर मौन हो जाती है। नेत्र मुंद जाते हैं। शरीर शिथिल पड़ जाता है। केवल तीव्र श्वास समय के अन्तर पर उठती है। मौन में उसीका स्वर ीत्कार करता है। कुमार स्थिर भाव से उसे देखते हैं। देखते रहते हैं। क्षण आते हैं। युग जाते हैं। कुमार

फुसफुसाते हैं।)

कुमार : (धीरे-धीरे) राजकुमारी ! तुम मौन क्यों हो गईं ? बोलती क्यों नहीं ?

(मौन)

कुमार : कुमारी शायद कुछ सोच रही हैं।

(कुमारी मौन ही रही पर उसका रूप जैसे प्रेमल ज्योति की तरह भासमान हो उठा। कुमार को लगा जैसे कुमारी के नेत्रों से झरता हुआ एक परम शांत, परम उज्ज्वल प्रकाश उसकी ओर बह रहा है और जैसे संघमित्रा स्वयं लुप्त होकर उसके नेत्रों से होती हुई उसके अंतर में समा गई है। वह पुकार उठता है)

कुमार : राजकुमारी ! राजकुमारी ! तुम कहाँ हो ? तुम बोलती क्यों नही ? बोलो···बोलो, तुम कहाँ हो ?

संघमित्रा : (जाग कर उनींदे स्वर में) कुमार ! मैं यहीं हूँ, कुमार !

कुमार : (अभी भी खोया-खोया) राजकुमारी ! तुम कहाँ चली गईं थीं। यह सब क्या था ? क्या था यह मायाजाल ? कैसी थी यह प्रणय-ज्वाला ? किसने पैदा की यह प्रणय-पिपासा ? राजकुमारी ! महानाश के समय भी तुम्हें यह प्रेम-लीला सुहाती है।

संघमित्रा : (तड़पकर दृढ़ स्वर में) कुमार ! नारी जिसे एक बार प्यार करती है उसके हाथों अपना रक्त उलीचा जाने पर

भी वह उसे प्यार करती रहती है।

कुमार : **(काँप कर)** राजकुमारी !

संघमित्रा : **(सहसा हँस पड़ती है)** डर गए, कुमार ! डर गए।

कुमार : हां कुमारी। मैं डर गया। युद्ध-भूमि में महा प्रलय देखकर भी जो नहीं डरा ! पिता को भूलुण्ठित देख कर भी जिसने आह तक नहीं की। मगध-सम्राट् की भृकुटि भी जिसकी दृष्टि को नहीं झुका सकी, वही कुमार इस क्षण डर गया।

संघमित्रा : **(हँसती हुई)** अचरज है कि कुमार वीर होकर डर गए। क्या मैं जान सकती हूँ कि कुमार के इस डर का कारण क्या है ?

कुमार : दया ?

संघमित्रा : **(काँप कर)** दया ?

कुमार : हाँ कुमारी ! मुझे डर है कि कहीं तुम्हारे प्रणय की वर्तमान स्थिति मेरी प्राणरक्षा का कारण न बने। तुम्हारा प्रेम मुझे पथ से विचलित न कर दे।

संघमित्रा : **(काँप कर)** तो···तो तुम जानते हो। तुम सब कुछ जानते हो। तुम्हें वे दिन याद हैं जब मगध के अतिथि के रूप में तुम मृगया खेलने हमारे यहाँ आए थे। जब सम्राट् ने तुम्हारे हस्तलाघव की प्रशंसा की थी और तुमने मेरे रूप की।

कुमार : कलिंग का कुमार कुछ भी होने से पहले पुरुष

है, राजकुमारी ! और पुरुष जो प्रशंसनीय है उसकी प्रशंसा करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

संघमित्रा : (**सम्भलकर**) जानती हूँ और तभी पूछती हूँ कि यदि मेरा प्रणय तुम्हारी प्राण-रक्षा चाहता है, तो इसमें बुरा क्या है।

कुमार : प्रणय प्राणों की भिक्षा नहीं मांगा करता, राजकुमारी ! मगध सम्राट् ने मेरा सिर काट डालने की आज्ञा दी है। मैं उस आज्ञा का सम्मान करूँगा। कुछ क्षण बाद जब मनमोहिनी उषा जागरण का संगीत अलापती हुई आकाश से उतरेगी तब उसी के साथ मेरी मृत्यु भी मेरा आलिंगन करने आयगी। मेरी मृत्यु में ही मेरा कल्याण है। कलिंग के महानाश की बेला में जब उसकी असंख्य युवतियों का सुहाग सिन्दूर रक्त से धुल गया, तो मैं तुम्हारी मांग में सिन्दूर नही भर सकता। आज मेरी आंखें तुम्हारा रूप देखने में अशक्त हैं। आज मेरे कान तुम्हारी प्रणय रागिनी सुनने के अयोग्य है।

संघमित्रा : कुमार ! कुमार !

(चण्डगिरि का प्रवेश)

संघमित्रा : कौन ! चण्डगिरि ! तुम आ गए।

चण्डगिरि : हाँ देवि ! आपको बहुत देर हो चुकी है।

संघमित्रा : कोई आया ?

चण्डगिरि : नही देवि !

संघमित्रा : तो अभी ठहरो·····

चण्डगिरि : देवि ! राजा की आज्ञा का उल्लंघन हो रहा है।

संघमित्रा : **(विनय)** थोड़ा, बस थोड़ा और, चण्डगिरि ! बात अभी अधूरी है।

चण्डगिरि : देवी की जैसी आज्ञा।

(जाता है)

संघमित्रा : **(निश्वास)** गया। उफ़ कुमार···

कुमार : **(व्यंग)** देवि संघमित्रा प्रणय के लिए इतना झुक सकती हैं ?

संघमित्रा : **(चोट खाकर)** लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ भी करना चातुर्य कहलाता है, कुमार !

कुमार : **(आवेश)** पर मै ऐसे चातुर्य से घृणा करता हूँ, देवि ! मैं अपना मस्तक कभी नहीं झुका सकता, कभी नहीं। मै मर सकता हूँ पर किसी की दया का भिखारी नहीं बन सकता।

संघमित्रा : **(गहरा निश्वास)** कुमार ! तभी तो मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ।

कुमार : परन्तु कुमारी ! मैं मगध-सम्राट् का बन्दी हूँ। मुझे तुमसे प्रेम करने का अधिकार नहीं है।

संघमित्रा : **(उसी तरह)** कुमार, मैं तुम्हें मुक्त करा सकती हूँ। अभी ! इसी क्षण करा सकती हूँ।

कुमार : नहीं ! कुमारी नहीं ! मैं मगध-सम्राट् की दया नहीं

चाहता। जिसने लाखों निर्दोष मानवों के प्राणों से होली खेली, जिसने लाखों ललनाओं को खून के आँसू बहाने पर विवश किया, जिसने शस्यश्यामला भूमि को अपनी अपवित्र आकांक्षाओं की ज्वाला में झुलस डाला। जो मेरे देश का दुश्मन और मेरे पिता का हत्यारा है। मै उसकी दया नहीं चाहता। नही, मैं उसकी दया का पात्र नही बन सकता। कभी नही बन सकता। मेरे शरीर में जब तक प्राण है तब तक मै शत्रु की दया स्वीकार नही करूँगा। मै कलिग की वीरता को कलंकित नहीं करूँगा ?

संघमित्रा : **(शांत)** दया नही, कुमार ! वह दया नही है।

कुमार : दया नही तो क्या है ?

संघमित्रा : पश्चात्ताप !

कुमार : पश्चात्ताप ! **(सहसा अट्टहास)** खूब। अत्याचारी अशोक और पश्चात्ताप ! नाग के दांतो में अमृत ! संघमित्रा ! तुम क्या कह रही हो ?

संघमित्रा : मै ठीक कह रही हूँ, कुमार ! तुम्हारे आने के बाद से सम्राट् पश्चात्ताप की आग में जल रहे हैं। तुम्हारे उन वाक्यों ने उन्हें आलोडित कर दिया है। मैने चण्डगिरि से इसीलिये समय माँगा है। तुम्हारी मुक्ति का सन्देश आने वाला है। भिक्षु उपगुप्त सम्राट् के पास गए हैं।

कुमार : भिक्षु उपगुप्त सम्राट् के पास गए हैं ?

संघमित्रा : डरो नहीं कुमार ! वे तुम्हारे प्राणों का दान माँगने नही गए है ।

कुमार : और किस लिए गए हैं ?

संघमित्रा : तुमसे बातें करने की आज्ञा मागने के लिए । जहाँ तक तुम्हारे प्राणों के दान का सम्बन्ध है, मै चाहती, तो तभी आंचल फैलाकर सम्राट् से तुम्हें मांग लेती पर···

कुमार : पर···

संघमित्रा : पर मै तुम्हें अपमानित करना नहीं चाहती थी ।

कुमार : (**चकित**) मै देवि का आशय नही समझा ।

संघमित्रा : आशय स्पष्ट है, कुमार ! तुम्हारी भांति मैं भी समझती थी कि तुम पर दया करना तुम्हारा अपमान होगा । मैने सम्राट् से तुम्हारे लिए एक शब्द भी नही कहा पर दूसरी ओर उनके भीतर पश्चात्ताप की आग धधकाने में भी कुछ नहीं उठा रखा । मै भिक्षु उपगुप्त की आज्ञा से···

कुमार : क्या···क्या तुम भिक्षु उपगुप्त की आज्ञा में विश्वास रखती हो ?

संघमित्रा : वह मेरे होने वाले गुरु हैं ।

कुमार : राजकुमारी ?

संघमित्रा : ठीक कह रही हूँ, कुमार !

कुमार : तो तुम यहाँ तक पहुँच गई । मेरे बचाने के लिए तुमने इतना कुछ कर डाला ।

संघमित्रा : तुम्हें नही कुमार ! अपने को बचाने के लिए, अपने स्वार्थ के लिए ।

कुमार : ठीक कहती हो, देवी ! यह स्वार्थ ही है। सब कुछ स्वार्थ है । इस स्वार्थ से कोई भी अछूता नही है। मैं भी नहीं हूँ । मेरा देश-प्रेम, मेरी वीरता, सब कुछ स्वार्थ है। परन्तु देवि ! मेरा स्वार्थ बहुत बड़ा है । वह अभी पूरा नही हुआ है। सम्राट् का पश्चात्ताप अभी तल पर ही है। उसे अंतर की गहराई मे जाने के लिए अभी और चोट की आवश्यकता है। विनाश के सम्पूर्ण हुए बिना निर्माण असम्भव है ।

संघमित्रा : क्या अभी और विनाश होना शेष है ?

कुमार : बहुत शेष है, देवि !

संघमित्रा : (**कंपित**) क्या कहते हो ?

कुमार : (**आवेश के प्रवाह में**) ठीक कहता हूँ, राजकुमारी ! अभी कलिंग का रक्त-यज्ञ पूर्ण होना शेष है । अभी मेरा वध शेष है, अभी तुम्हारा हृदय टूटना शेष है । अभी अशोक को अपने पश्चात्ताप से उत्पन्न दी गई आज्ञा का उल्लंघन देखना शेष है····

संघमित्रा : (**पागल सी**) क्या, क्या कहते हो····

कुमार : ठीक कहता हूँ। वह देखो चण्डगिरि फिर आ गया है। इस बार वह लौटने वाला नहीं है। मेरा समय आ पहुँचा है।

(**चण्डगिरि का प्रवेश**)

चण्डगिरि : देवि ! सम्राट् की आज्ञा पालन करने की वेला आ पहुँची है।

संघमित्रा : (**व्याकुल**) चण्डगिरि ! दो क्षण और। बस वे आने ही वाले हैं।

कुमार : नही चण्डगिरि ! अब किसी के आने की प्रतीक्षा नही है। तुम यही ठहरो और सुनो देवि संघमित्रा ! मै तुम से प्रेम करता हूँ। अपने जीवन से बढ कर प्रेम करता हूँ। तुमसे भी अधिक मै अपने देश से प्रेम करता हूँ। उससे भी अधिक मै मनुष्य से प्रेम करता हूँ। वही मनुष्य आज सोया हुआ है। उसे जगाने के लिए अभी और बलिदान की जरूरत है····

संघमित्रा : (**टोक कर**) कुमार सुनो तो, सुनो ··

कुमार : मै बहुत सुन चुका, कुमारी ! अब तुम्हे सुनना है। सुन लो, कलिग-कुमार प्रणय से नही डरता, नारी से नही डरता। सघमित्रा ! यदि तुम सचमुच मुझसे प्रेम करती हो तो समझ लो कि तुम्हारा प्रियतम कलिग के रक्त-यज्ञ में अपने रक्त की पूर्णाहुति देकर उसे सम्पूर्ण करना चाहता है। और वह तुम्हे भी निमत्रण देता है कि तुम भी इस यज्ञ में आहुति दो, अपने प्रणय का बलिदान करो; कलिग-नारियों के रोदन मे अपना रोदन मिला दो, जिससे धरती—अम्बर काँप उठे, महानाश पूर्ण हो जाय और महतिनिशा के बाद उषा का उदय हो···

(बोलता-बोलता वह सहसा बुत से बने चण्डगिरि की ओर बढ़ता है)

कुमार : लाओ चण्डगिरि, कहाँ है तुम्हारी कटार। तुम्हारे हाथों से मेरे हाथों में कम शक्ति नहीं है।

(चण्डगिरि पागल-सा समझ ही नहीं पाता। बिजली-सी कौंधती है। कुमार कटार छीन लेता है। चण्डगिरि और संघमित्रा जागकर दौड़ते हैं)

चण्डगिरि : कुमार क्या करते हो? मेरी कटार दो। मेरी कटार दो।

संघमित्रा : कुमार··· कुमार, कटार छोड दो। **(दोनों कटार छीनना चाहते हैं पर उससे पूर्व कुमार उसे अपनी छाती में भोंक लेते हैं। राजकुमारी चीखती है)** ओह···कुमार··· कुमार! तुमने क्या किया? तुमने कटार छाती में मार ली। ओह, कोई है, चण्डगिरि!

(कटार निकालना चाहती है। कुमार रोकता है)

कुमार : चण्डगिरि···चण्डगिरि कटार निकाल लो।

चण्डगिरि : **(कटार खींचता है और कुमार आह करता है)** मैं जाता हूँ और सम्राट् से कहता हूँ कि कुमार ने अपने हाथ से अपनी छाती में कटार भोंक कर अपने प्राणों का अन्त कर लिया **(भागना चाहता है)**

संघमित्रा : **(व्याकुल)** चण्डगिरि! कटार मुझे दो। यह कटार मुझे देते जाओ।

चण्डगिरि : **(मुड़कर)** राजकुमारी! चण्डगिरि इतना मूर्ख नही है कि वह कटार आपके हाथ में देकर आपको आत्म-हत्या का अवसर दे।

(चला जाता है)

संघमित्रा : (**जैसे दौड़ाती है**) चण्डगिरि, रुको चण्डगिरि !

कुमार : (**संघमित्रा का आंचल पकड़ कर**) कहाँ जाती हो, संघमित्रा ! ठहरो । प्रणय वेला में मुझे अकेला न छोड़ो । मै अब जाने वाला हूँ । मन भर कर प्यार कर लो और फिर···

महेन्द्र : (**प्रवेश करते करते**) संघमित्रा ! क्षमा कर दिया, सम्राट् ने कुमार को क्षमा कर दिया । कुमार अब स्वतन्त्र है । उनका देश स्वतन्त्र है । भन्ते उन्हें लेने आए है । (**सहसा नीचे दृष्टि जाती है**) क्या···यह क्या···यह रक्त कैसा ! और कुमार···क्या कुमार का···ओह ! चण्डगिरि दो क्षण भी न रुक सका ।

संघमित्रा : चण्डगिरि को कुछ नही करना पड़ा, भैया ! सम्राट् की दया की बात सुनने से पूर्व ही कुमार ने चण्ड-गिरि की कटार से अपने प्राणों का अन्त कर डाला ।

महेन्द्र : यह क्या हुआ भन्ते ! यह क्या हुआ ? नव-प्रभात मे उषा के स्थान पर यह निशा कहाँ से आगई ?

भिक्षु : शान्त देवि संघमित्रे ! शान्त महेन्द्र ! जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ । यह प्राणों का अन्त नही है । मैं इसका अर्थ समझता हूँ । कुमार ने कलिंग के इस रक्त-यज्ञ में पूर्णाहुति दी है ।

संघमित्रा : (**काँप कर**) भन्ते !

महेन्द्र : क्या कह रहे है, भन्ते ?

भिक्षु : ठीक कह रहा हूँ । उसने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उसके बलिदान की नीव पर मनुष्यता जागेगी । अशोक [illegible] अवश्य पहचानेगा । महानाश जितना

पूर्ण होता है निर्माण भी उतना ही दृढ होता है।

कुमार : (नेत्र खोल कर शिथिल पर शान्त स्वर में बोलता है) प्रणाम भन्ते। प्रणाम, नमो बुद्धाय। नमो बुद्धाय। बुद्धं शरण गच्छामि, धम्म शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि।

(कहते-कहते कुमार की श्वास रुक जाती है। नेत्र मुंद जाते हैं। राजकुमारी चीख मार कर गिर पड़ती है, तभी सम्राट् अशोक, चण्डगिरि के साथ शीघ्रता से घबराए हुए प्रवेश करते हैं। चण्डगिरि की भयानकता तरल होकर बड़ी दयनीय लगती है। सम्राट् अशोक के मुख पर पराजय गहरी होती आ रही है। वे अभी मंच के द्वार पर ही हैं।)

चण्डगिरि : राजकुमारी साक्षी हैं देव ! कुमार ने मेरे हाथ से कटार छीन कर अपनी छाती में भोंक ली।

अशोक : (क्रोध) और तुम खड़े-खड़े देखते रहे। तुम अधे हो गए। तुम्हारे हाथो की शक्ति समाप्त हो गई। तुमने अपनी आँखों के सामने मेरी आज्ञा की अवहेलना होने दी। तुमने···मैं पूछता हूँ तुम्हारे हाथ से कुमार ने कटार कैसे छीन ली···

महेन्द्र : (आगे बढ़ कर) कटार कैसे छीन ली, यह तो आप जानते होंगे पर भैया ! चण्डगिरि ठीक कहता है। मैं जब यहाँ पहुँचा तो सब कुछ समाप्त हो चुका था। कुमार ने आपकी दया स्वीकार नहीं की।

अशोक :(सहसा महेन्द्र को देखकर) कुमार ने मेरी दया स्वीकार नहो की ? **(सहसा कुमार के पास बैठ जाता है)**

कुमार ! कुमार ! तुम जीत गए । मैं पराजित हो गया । मगध का अत्याचारी सम्राट् अशोक कलिग के राजकुमार से पराजित हो गया । तुम्हारी बहन ने ठीक कहा था कि तुम मेरी दया स्वीकार नही करोगे । कभी नही करोगे । तुमने सचमुच वही किया जो उसने कहा था ।

संघमित्रा : **(आँखों मे आँसू भरे चकित)** कुमार की बहन ! कहां है वह ? क्या वह आपके पास आई थी ?

(सहसा राधागुप्त के साथ महारानी कारुवाकी और भिक्षुणी वेशधारी राजकुमारी का प्रवेश । महारानी दुखी है और राजकुमारी के मुख पर अतिशय करुण गम्भीरता है ।)

राधागुप्त : इधर से महारानी ! इधर आइए ।

(वे सब वहाँ आते हैं जहाँ कुमार चिर निद्रा में सोया है । उन्हें देख कर संघमित्रा खड़ी हो जाती है ।)

संघमित्रा : कौन ! भाभी और···और कलिग की राजकुमारी !

कारुवाकी : हाँ, कल जो कलिग की राजकुमारी थी वही आज भिक्षुणी है लेकिन यह क्या हुआ संघमित्रा ! तुम इतना भी नही कर सकी ।

संघमित्रा : प्रेम के पाश से मानवता का पाश प्रबल निकला, भाभी ! कुमार ने सम्राट् को पराजित करने के लिए नारी का दर्प चूर कर डाला ।

राजकुमारी : नहीं, देवि संघमित्रा ! यह कुछ नहीं, कुमार केवल कलिग का रक्त-यज्ञ सम्पूर्ण करना चाहते थे । और वही उन्होंने किया । रात्रि के बाद उषा जब अपने प्राणों का हनन कर डालती है तभी अरुणोदय होता है ।

(कहते-कहते भिक्षुणी वेशधारी राजकुमारी घुटने टेक कर कुमार के पास बैठना चाहती है। सहसा प्रेम का आवेग उमड़ता है। वह दोनों हाथों से कुमार को पकड़ कर चीत्कार कर उठती है।) भैया·····भैया·····

(तब सहसा अशोक दोनों हाथों से मुँह ढक कर पीछे हट जाते हैं। चण्डगिरि, राधागुप्त और महेन्द्र भी मुड़ते हैं। संघमित्रा शीघ्रता से राजकुमारी को छाती से चिपका लेती है और रोती हुई कहती है।)

संघमित्रा : बहन···बहन, हम दोनों आज दुखिनी है। हमें इस शोक को वहन करना है। हमारे शोक में ही मानवता का कल्याण है।

(भिक्षु उपगुप्त फिर आगे आते हैं)

उपगुप्त : तथागत के मार्ग पर शोक के लिए स्थान नहीं है, भिक्षुणी!

(राजकुमारी सहसा अपने को छुड़ा कर उन्हें देखती है)

राजकुमारी : **(तीव्रता से)** मै नही चाहती तथागत का व्रत। ले लो अपने वस्त्र। मै राजकुमारी बनना चाहती हूँ। मै फिर साधारण नारी बनना चाहती हूँ। मैं प्रतिशोध लेना चाहती हूँ। मैं कलिग के इस निर्मम महानाश का प्रतिशोध लेना चाहती हूँ। मै हत्यारे अशोक का वध करना चाहती हूँ।

संघमित्रा : कुमारी···कुमारी···

(आगे बढ़ कर कुमारी को फिर छाती में भर लेती है। कुमारी छूटने का प्रयत्न करती है)

राजकुमारी : छोड़ दो, मुझे छोड़ दो·

अशोक : **(आगे बढ़ कर कुमारी के पास घुटने टेक कर बैठ जाते हैं)** कुमारी ! तुम ठीक कहती हो। मैं हत्यारा हूँ। मैं तुम्हारे पिता का हत्यारा हूँ। मैं तुम्हारे भाई का हत्यारा हूँ। तुम मेरा वध करो। लो **(कटार देता है)** इस कटार से मुझे मार डालो। मेरी हत्या के बाद ही यह यज्ञ पूर्ण होगा। लो यह कटार···लो···

राजकुमारी : **(विचलित होकर)** नही ··नही ·

अशोक : **(उसी आवेश में)** लो कुमारी ! मैं प्रस्तुत हूँ···

राजकुमारी : नहीं···नहीं···यह क्या है। यह मुझे क्या हो रहा है। भैया, भैया···

(कुमारी दोनों हाथों से मुँह ढक कर चीत्कार कर उठती है। भिक्षु उपगुप्त पास आकर उसके सिर पर हाथ रखते है)

उपगुप्त : शान्त भिक्षुणी, शान्त ! अशोक का वध करने के लिए अभी और संयम की आवश्यकता है। कुमार ने उसी के लिए प्राणों का दान किया है। उसी के लिए तुम्हें इस इच्छा का दान करना होगा।

(राजकुमारी सहसा भिक्षु के पैर पकड़ लेती है।)

राजकुमारी : क्षमा, गुरुदेव क्षमा !

(भिक्षु उसकी पीठ पर हाथ फेरते हैं, सब सिर झुकाकर मानो उस आशीर्वाद को ग्रहण करते है, करुणा नव प्रकाश में परिवर्तित होती दिखाई देती है। मंच पर नव-प्रभात की किरणें चमकती है, कुमार के शव पर इन्द्र-धनुष-सा बना है और परदा धीरे-धीरे गिरने लगता है।)

उपसंहार

(पहले अंक वाला दृश्य। अशोक गम्भीर दिखाई देने वाली मुद्रा में इधर-से-उधर, उधर-से-इधर घूम रहे हैं। वैसे पास जाकर देखें तो वह बहुत उद्विग्न हैं। रह-रह कर वे खड़े होकर शून्य में दृष्टि गड़ा कर देखने लगते हैं। फिर आप-ही-आप बोल उठते हैं।)

अशोक : (**स्वगत**) क्या से क्या हो गया। पिछले दस दिन में वह व्यथा जो किसी क्षण अचानक उमड़ पड़ी थी, मुझे कहाँ ले उड़ी। जैसे मैं अबतक बराबर कोई भयंकर स्वप्न देख रहा था···मै अपने को कितना शक्तिशाली समझता था। मेरा नाम ही संसार को त्रास देने वाला था। मैं साकार भय था पर हुआ यह कि अवसर आने पर मै एक बन्दी से अपनी आज्ञा नही मनवा सका। दस दिन तक जिसने धरती को मुरदों और घायलों से भर दिया, जिसने इतनी हत्याएँ कीं कि उनकी गिनती तक नही हो सकती, उसी ने जब चाहा तो वह एक मनुष्य के प्राण नहीं बचा सका। (**ऊपर देख कर**) मैं एक व्यक्ति के प्राण नही बचा सका। उस एक ने जैसे मेरे शक्तिशाली जीवन को झकझोर दिया। उसने मुझे चुनौती दी—तू शक्तिशाली नहीं, खोपड़ी ठुकराने वाला गीदड़ है। गीदड़···(**कातर भाव**) गीदड़··· मैं गीदड़···और··· और इससे भी अचरज वाली बात तो यह है कि मै इस

चुनौती को झुठला नहीं सका। उल्टा यह ज्ञान मुझे नया मार्ग सुझाने वाला बन गया। देखते-देखते जैसे भयंकर स्वप्न वाली रात बीत गई। उज्जवल प्रभात आ पहुँचा। कलक धुल गया, मेरी आत्मा निर्मल होने लगी पर··· पर वह हाहाकार, वह दारुण चीत्कार, वह असख्य जीवित चिताओं से उठने वाली सन्तप्त आहे, वह खण्डहरों से उठती उल्लुओं की हू-हू और चमगादड़ों की ची-चीं, वह आबाल वृद्ध, वनिताओं के नेत्रों से बहती हुई ज्वाला, वह···वह क्या मुझे नई सृष्टि करने देगी। उसे भूल कर क्या मैं नव-निर्माण कर सकूँगा···(**एक क्षण मौन रहकर**) लेकिन भिक्षु कहते है—हाँ। तुम नव-निर्माण कर सकोगे। तथागत का मार्ग उसी नव-निर्माण का सन्देश वाहक है··· (**भावावेश**) तथागत का मार्ग। अहिसा और मानवता का मार्ग···क्या मैं उस पर चल सकूँगा ? क्या मैं प्रेम से दिग्विजय कर सकूँगा ? कुछ समझ में नहीं आता। अभी कुछ समझ में नहीं आता···क्या यह युद्ध बन्द हो जायगा (**कटार लेकर**) क्या ये अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो जायंगे···क्या ये संघर्ष मिट जाएँगे ?

(महारानी कारुवाकी का प्रवेश)

कारुवाकी : देव !

अशोक : (**चौंककर**) कौन ? देवि ! तुम आई हो।

कारुवाकी : हाँ स्वामी ! राह देखते-देखते जब बहुत देर हो गई तो मुझे आना पड़ा। देखती हूँ स्वामी इधर बहुत सोचने लगे हैं।

अशोक : और बिना कार्य के बहुत सोचना गर्भपात के समान

है । देवी ठीक कहती है ! पर देवि ! क्या सचमुच नया युग आने वाला है ? क्या सचमुच जीवन प्रेम और सौदर्य से भर जायगा ? क्या सचमुच सुख के लिए लड़ाई नही होगी ?

कारुवाकी : स्वामी जब ऐसा सोचते हैं तो वह होगा भी ।

अशोक : **(उत्सुकता से)** वह होगा ! सच·· वह होगा ।

कारुवाकी : अवश्य होगा स्वामी ! भिक्षु कहते थे कि सम्राट् इतना सोचते है तो अवश्य नवयुग का उदय होगा । उसी के लिए युवराज ने प्राणों की आहुति दी है ।

अशोक : सच !

कारुवाकी : हाँ स्वामी ! जब अपने अन्तर मे सघर्ष मचता है तभी मनुष्य अपने को पहचानता है और अपने को पहचानने पर मानव और मानवता को पहचानना कठिन नहीं रह जाता ।

अशोक : कितना सुन्दर कहा तुमने देवि ! कितना सुन्दर ! मुझे नही पता था कि तुम इतना जानती हो ।

कारुवाकी : मै कुछ नही जानती, स्वामी । यह सब मुझे भिक्षु उपगुप्त ने बताया है ।

अशोक : भिक्षु ठीक कहते है । **(एकदम)** वे इस समय कहाँ हैं देवि ?

कारुवाकी : वे इस समय देवि सघमित्रा के पास है स्वामी ! देवि ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है । मै आपको वही ले चलने के लिए आई थी । **(सहसा बुद्धमंत्र गाने का स्वर उठता है)** सुनो-सुनो, स्वामी ! कितना मधुर, कितना प्रिय, कितना आश्वस्त करने वाला स्वर है ।

(स्वर उठता है)

स्वर : बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

अशोक : (**भावुक**) सचमुच बड़ा प्रिय, बड़ा मीठा स्वर है। कौन गाता है, देवि ?

कारुवाकी : कलिंग की राजकुमारी, देवि संघमित्रा और रेवा।

अशोक : रेवा ! रेवा भी भिक्षुणी बनने जा रही है।

कारुवाकी : और मै भी। मेरा मन भी यह मंत्र गाने को करता है। गाओ स्वामी ! आप भी गाओ—बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

अशोक : मै भी गाऊँ। मैं भी पुकारूँ। देखूँ, प्रयत्न करूँ। शायद किसी दिन मै भी इस मन्त्र के योग्य हो सकूँ। (**गाता है**) बुद्ध शरणं गच्छामि, धर्म्म शरणं गच्छामि, संघं शरण गच्छामि।

(मुख पर एक ज्योति उभरती है। नेत्रों का प्रकाश तरल होता है। कारुवाकी नेत्र मुँदकर आत्म विभोर हो उठती है। तभी रेवा का स्वर उठता है। वह तन्मय होकर गा रही है।)

गीत

बुद्ध-शरण चल संघ शरण !
धम्म शरण चल बुद्ध शरण !
बीती रात भयंकर काली,
नव-प्रभात की फैली लाली,
दशों दिशाओं में रव गूंजा,
भव-भय-बाधा-दुःख हरण !
बुद्ध-शरण चल संघ शरण !
धम्म-शरण चल बुद्ध-शरण !

गैरिक चीर उषा लहराये,
मार्ग तथागत का दिखलाये,
जीवन में निर्वाण सुलभ है,
जग में हो स्वर्णावतरण !
बुद्ध-शरण चल संघ-शरण !
धम्म-शरण चल सघ-शरण !
सत्य अहिंसा का युग आया,
करुणा का सागर लहराया,
शान्त हुई प्रलयंकर ज्वाला,
मिटा द्वेष संघर्षण रण !
बुद्ध-शरण चल संघ-शरण !
धम्म-शरण चल बुद्ध-शरण !
धम्म-राज्य की बेला आई,
रोती मानवता मुस्काई,
प्रेम-प्रीति जयमाला लेकर,
संस्कृति करती मनुज-वरण !
बुद्ध-शरण चल संघ-शरण !
धम्म-शरण चल बुद्ध-शरण !

(स्वर पास आता जाता है। रेवा, संघमित्रा और कलिंग-कुमारी के साथ मंच पर प्रवेश करती है। वह तन्मय होकर गा रही है। शेष दोनों शांत मन उसके साथ हैं। सब के मुख पर प्रकाश है। अशोक और कारुवाकी सहसा सबको प्रणाम करते हैं। वे गाते-गाते दूसरी तरफ जाते हैं। अशोक और कारुवाकी दोनों प्रणाम की मुद्रा में झुके रह जाते हैं। स्वर दूर जाता है तो अशोक विश्वास

के स्वर में कहता है।)

अशोक : देवि ! मैं नहीं जानता, मै अभी इस मंत्र का अधिकारी हूँ या नहीं। मुझे अभी अपनी परीक्षा लेनी है। पर एक बात आज मै अवश्य कर सकता हूँ। मै निश्चय करता हूँ कि अब दिग्विजय नहीं धर्म-विजय होगी; भेरी-घोष धर्म-घोष में परिवर्तित कर दिया जायगा। अब फिर धरती माता अपनी सन्तान का रक्त पीने को विवश न होगी, अब फिर घायलों के चीत्कार से आकाश नही काँपेगा। अब फिर विधवाओं और अनाथों के करुण क्रन्दन से शान्ति की हत्या नही होगी। अब फिर वह रक्त-रंजित इतिहास अपने को नहीं दोहरायगा। **(गहरी श्वास)** मैं देख रहा हूँ देवि ! आने वाले युग के लोग अपने दुख और अभावों का नाश शक्ति के प्रयोग से नहीं, प्रेम के प्रयोग से किया करेंगे।

कारुवाकी : प्रियतम ! देव ! आप कितने महान है, कितने ?

अशोक : महानता अभी मुझ से दूर है, देवि ! पर मै प्रयत्न करूँगा और मै जानता हूँ कि मै सफल हूँगा।

(भिक्षु उपगुप्त का प्रवेश)

उपगुप्त : जो प्रयत्न करते है सफलता उनके चरण चूमती है, सम्राट् !

(भिक्षु को देखकर दोनों फिर प्रणाम की मुद्रा में झुक जाते हैं। भिक्षु आशीर्वाद के लिए हाथ उठाते हैं और परदा यहीं गिरता है।)

●

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. तट के बंधन
२. रीढ़ की हड्डी
३. जीवन-पराग
४. हमारा स्वाधीनता संग्राम
५. माँ का बेटा
६. मोटेलाला
७. रामू की होली

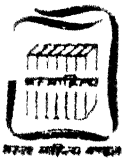

एक रुपया